श्रीराधा जन्म बधाई

राधा जनम बधाई होय, होय मेरी मैया॥
कीरति के जनमी बाला, जंह लुट रही मोती माला
मोती छ र र र होय, होय मेरी मैया॥
कोई माखन माट दुरावै, दधि दूध पनारो बहावै
झरना झ र र र होय, होय मेरी मैया।
कोई लड्डुआ लै लुढ़कावै, बरफी की चोट चलावै
पापड़ प र र र होय, होय मेरी मैया।
नाचैं फिरकैयां लैके, सब कूदैं तारी दैके
तानन त न न न होय, होय मेरी मैया।
कोई महुवर बैन बजावै, कोई गीत रसीले गावै
ढोलक ढम ढम ढम ढम होय, होय मेरी मैया।
सब नाच रही हैं गोरी,श्री भानु भवन की पौरी
ठुमके ठम ठम ठम ठम होय, होय मेरी मैया।
कोई कर देवै गठजोरा, नर नारी रस में बोरा
हांसी हा हा हा हा होय, होय मेरी मैया।
कोई ऐंड़ो ऐंड़ो डोलै,मटकै चटकै रस घोलै
घुंघरू छम छम छम छम होय, होय मेरी मैया॥

श्रीकृष्ण जन्म बधाई

गोपी झमक झमक कें नाचैं, ग्वाला गावैं मीठे तान॥
नन्द भवन में बजी बधाई, कोयल सी कौंहकी सहनाई
ढोल झाँझ ढप धुनी सुहाई
गहक गहक के बाजन लागे चारों ओर निसान।
हेरी कह-कह ग्वाला गावैं, लकुट पिछौरा लै फहरावैं
उछरें और सबन उछरावैं
तारी दै दै हँसे हँसावे नैंक न राखें मान।
झूमक नाचैं ब्रज की नारी, ऐसौ कोहकंदो भयौ भारी
मन भाई सी देवैं गारी
ऐसौ आनन्द बढ्यौ नन्द घर जब जनमें ब्रजप्रान।
मणि कुण्डल कानन में झूमैं, गुंथे फूल झुक गालन चूमैं
उछरत हार कुचन पै घूमैं
झमकैं रवा कौंधनी बिछुआ मुंदरी कर पग पान॥

–पूज्य श्री बाबा महाराज जी कृत

राधाष्टमी उत्सव पर विशेष आयोजन

२८ अगस्त २०१७ नाटिका – भक्त नरसी मेहता चरित्र,
सायं ७:३० बजे
स्थान – रस मण्डप गह्वरवन बरसाना।
२९ अगस्त २०१७ – ब्रजवासियों द्वारा
श्रीराधा जन्म बधाई गायन व नृत्य आयोजन,
समय प्रात: १० बजे,
स्थान – श्रीमान मन्दिर, बरसाना

अनुक्रमणिका

१. श्रीराधाष्टमी महामहोत्सव ४

२. पूर्णचंद्रानना की कान्ति से सुशोभित हुए कृष्णचन्द्र ८
(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी नवीनाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

३. भगवत्कृपा का फल – 'सत्संग' १०
(ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)

४. कृष्णाराधिकाओं की समर्था रति १३
(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी नंदनीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

५. धामाराधना १४
(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी दिव्यांशीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

६. नृत्य–गान ही रसोपासना १६
(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी मधुप्रियाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

७. गौ–भक्ति ही गोविन्दाराधन १६
(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी श्यामाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

८. मोहविभंजनी श्रीगीताजी २०

९. प्रेम–प्राप्ति का उपाय २१
(संकलनकर्त्री/लेखिका – साध्वी दिव्याजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

१०. सत्यनिष्ठ हरिश्चंद्रजी २२
(अन्तर्राष्ट्रीय कथा व्यास – डॉ. श्री रामजीलाल शास्त्री)

११. महापुरुषन की दुर्लभता २६
(व्यासाचार्य पं.श्रीमहेशचन्द्रजी शास्त्री)

१२. मानमंदिर की वर्तमान गतिविधियाँ २८

१३. गुरुकुल बालवर्ग ३०

१४. GLORY OF DHAM ३२

आवरण तथा अन्य चित्रों के लिए गूगल एवं समस्त वैष्णववृन्दों का आभार।

श्रीमानमन्दिर की वेबसाइट www. maanmandir. Org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८.३० से ९.३० तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६.३० से ७.३० तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं। इस पत्रिका में दिए गए श्रीबाबामहाराज के सत्संग पर आधारित लेखों को यू. टूब. (You Tube) के द्वारा उपलब्ध सत्संग के माध्यम से लाभ उठाया जा सकता है।

संपादकीय

ब्रजेन्द्रसूनु नंदनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र प्रेयसी कृष्णाराध्या परमाह्लाद की मूर्तिरूपा **श्रीमती राधिका** चराचर जगत की आधारभूता हैं, जो सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याणार्थ धराधाम पर अवतरित होती हैं। त्रिलोकी में पृथ्वी सर्वश्रेष्ठा है, इसमें भी जम्बूद्वीप सर्वश्रेष्ठ द्वीप है, यहाँ भी भारतभूमि अद्वितीया है। भारतवर्ष में मथुरापुरी लोकपावनी धरा है, मथुरा में वृन्दावन और वृन्दावन में श्रीधाम बरसाना तथा बरसाना में 'वृषभानु–महल' जहाँ भाद्रमास शुक्लपक्ष की अष्टमी को जो प्रकट होती हैं, उन राधारानी एवं ब्रजराज श्रीकृष्ण की कृपावर्षा में निरन्तर अभिसिञ्चित समस्त भक्तवृन्द को लाल–लाड़िली के जन्मोत्सव के अवसर पर कोटि–कोटि बधाई। 'राधाष्टमी विशेषांक' जो राधामाधव के ब्रजरज–केलिविलास–रसस्नाता ब्रजबालसाध्वियों की रसमयी भावना की रसीली प्रस्तुति है, अवश्य ही पाठकों के चित्त में दिव्य प्रेम–पिपासा का संचरण करेगी।

–श्रीराधाकान्तजी शास्त्री, श्रीमानमन्दिर व्यवस्थापक।

संरक्षक –

श्री राधा मान बिहारी लाल

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अनेकानेक सत्कार्यों का संचालन प्रभु की प्रियता व लोक कल्याण की भावना से नि:शुल्क कर रहा है, उसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका का भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है।

श्रद्धानुसार भावार्पित तुलसीदल भी ग्राह्य है अर्थात् स्वेच्छानुदान स्वीकृत है।

प्रकाशक –

श्रीराधाकान्त शास्त्री

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ. प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558, 9927194000

श्रीराधाष्टमी महामहोत्सव

माहात्म्य–कथा

श्रीराधाष्टमी महोत्सव कई लोग मनाते हैं किन्तु इसका माहात्म्य सभी को विदित नहीं है। नारद पांचरात्र में कहा गया है –

यथा ब्रह्मस्वरूपश्चश्रीकृष्णः प्रकृते पराः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृते पराः॥

जिस प्रकार श्रीकृष्ण प्रकृति से परे साक्षात् ब्रह्म हैं, उसी प्रकार श्रीराधिका भी हैं। **"आविर्भावस्य तस्याः कालेन नारद"**

जिस तरह श्रीकृष्ण का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, वैसे ही राधिकारानी का भी आविर्भाव और तिरोभाव होता है। श्रीराधा सत्यस्वरूपा हैं। पद्मपुराण में ब्रह्मखण्ड के सातवें अध्याय में राधाष्टमी महोत्सव का माहात्म्य वर्णित है। नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा – "पितामह! राधाष्टमी महोत्सव का क्या माहात्म्य है?" ब्रह्माजी बोले कि नारद! सतयुग की बात है, लीलावती नामक एक परम पापमयी वेश्या थी, उसका उपाख्यान राजा परीक्षितजी से कुछ–कुछ मिलता है। ऋषि के श्राप के कारण तक्षक द्वारा परीक्षित की अकाल मृत्यु होने वाली थी परन्तु श्रीमद्भागवत कथा के श्रवण से उनको साक्षात् भगवद्धाम की प्राप्ति हुई। वह तो परम भक्त एवं धर्मात्मा, पुण्यशाली राजा थे, उनको जो शाप मिला था, वह ऋषि का शाप था अन्यथा उनका कोई पाप कर्म नहीं था किन्तु लीलावती तो परम पापमयी वेश्या थी, इसने केवल पाप किये थे। उसके पापों का ही परिणाम था कि एकबार उसे एक काले सर्प ने डस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। उसको लेने के लिए यमदूत पहुँचे। उसके शरीर में यमराज का पाश बाँधा गया और जैसे ही यमदूत उसे ले जाने को तैयार हुए, वैसे ही वहाँ भगवान् के दूत आ गए। उन्होंने यमदूतों से कहा –"रुको, तुम लोग इसको कहाँ ले जा रहे हो?" यमदूत – "यह पापमयी है, इसने जीवन में केवल पाप ही किया है। काले सर्प के काटने से इसकी अकाल मृत्यु हुई है। अब हम इसको नारकीय यातना देने के लिए नरक ले जा रहे हैं।"

विष्णुदूत – "नहीं, इसका तुम लोग स्पर्श भी नहीं कर सकते हो।" यमदूत बोले – "क्यों?"

विष्णुदूत – "एकबार इसने 'राधाष्टमी व्रत' किया था, 'श्रीराधाष्टमी उत्सव' मनाया था। इसीलिए तुमलोग इसका अब स्पर्श भी नहीं कर सकते हो।"

यमदूत बोले – "यह वेश्या कोई भक्त तो नहीं थी।"

विष्णुदूत – "यह भक्त तो नहीं थी लेकिन एकबार यह कहीं जा रही थी, मार्ग में किसी स्थान पर कुछ भक्त लोग राधाष्टमी व्रत करके राधारानी का उत्सव मना रहे थे। इस वेश्या का कोई सौभाग्य था जो यह वहाँ उन भक्तों के बीच में खड़ी हो गयी। भक्तजन श्रीराधे–राधे नामोच्चारण करते हुए संकीर्तन और नृत्य कर रहे थे। इस वेश्या को वह राधाष्टमी उत्सव बहुत अच्छा लगा। श्रीजी का नाम इतना मधुरतम है कि उन भक्तों के नृत्य–गान के साथ यह वेश्या भी नृत्य करने लगी। इस प्रकार इस वेश्या ने उस दिन राधाष्टमी उत्सव मनाया। उसी पुण्य के प्रभाव से अब इसके सारे दुष्कर्म समाप्त हो गए। इसलिए अब तुमलोग इसका यमपाश खोलकर अतिशीघ्र इसे मुक्त कर दो।" विष्णुदूतों के आदेश से वेश्या का यमपाश खोल दिया गया और विष्णुदूत उसे भगवद्धाम ले गए। ऐसा आश्चर्यजनक राधाष्टमी उत्सव का माहात्म्य है। इसीलिए देवीभागवत में भगवान् नारायण ने नारदजी से कहा –

कृष्णार्चायामनधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलै तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनं॥

"नारद! बिना राधारानी की उपासना किये कृष्णोपासना का अधिकार जीव को प्राप्त ही नहीं होता है। इसलिए सभी वैष्णवों को राधारानी की उपासना करना चाहिए।" एक बार नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा – "पिताजी ! राधारानी का थोड़ा परिचय बताइये।" ब्रह्माजी बोले कि श्रीराधिका कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं, इनके बिना रासेश्वर एक क्षण को नहीं रह सकते।

कृष्ण प्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यथा।

श्रीजी का नाम 'राधा' इसीलिए हुआ है क्योंकि संसार में जितनी भी कामनाएँ हैं, वे राधारानी की कृपा से पूर्ण होती हैं

राधनोति सकलान् कामान् तस्मात् राधेति प्रकीर्तितः।

श्रीजी की अवतार–कथा

एकबार नारदजी ने भगवान् शंकर से पूछा – "हे शम्भो! कृष्णजन्माष्टमी के पंद्रह दिन बाद जो श्रीराधाष्टमी आती है, उस महोत्सव को आप अत्यंत धूमधाम से मनाते हैं, इसके बारे में मुझे भी कुछ बतायें! ये राधा कौन हैं? ये 'राधा' लक्ष्मी हैं अथवा देवपत्नी हैं अथवा महालक्ष्मी हैं अथवा सरस्वती हैं या अंतरंगा विद्या हैं या

वैष्णवी प्रकृति हैं ? ये वेदकन्या हैं या देवकन्या हैं अथवा मुनिकन्या हैं ? हे शम्भो ! कृपा करके आप इनका परिचय भी बतावें !" भगवान् शंकर बोले कि नारद ! कोटि–कोटि महालक्ष्मी भी राधारानी के सामने तुच्छ हैं। मैं शंकर इनका वर्णन करने में असमर्थ हूँ। मैं शिव तो क्या त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं जो राधारानी की महिमा का वर्णन कर सके। अनंत मुखों से भी उनकी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। वृषभानु और कीर्ति जी से राधारानी मध्याह्नकाल में प्रकट हुई। यद्यपि बरसाने में राधाष्टमी पर प्रातःकाल श्रीजी का अभिषेक होता है किन्तु पुराणों में (गर्गसंहिता आदि में) राधारानी का प्राकट्यकाल मध्याह्न १२ बजे का समय बताया गया है, जिस समय सूर्य अपने सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित होता है। राधाष्टमी के दिन शिवजी मंगलकलश की स्थापना करते हैं और स्वर्णमयी राधिका की पूजा करते हैं। एकबार मिथिला–नरेश राजा बहुलाश्व अपने राज्य में राधाष्टमी महोत्सव मना रहे थे, उसी समय देवर्षि नारद उनके महल में पहुँचे। देवर्षि को देखकर राजा बहुलाश्व बोले –"मुनिवर ! आप बहुत शुभ अवसर पर पधारे हैं। आज राधाष्टमी है, हर दिशा में राधानाम की ध्वनि गुंजायमान हो रही है। चहुँ ओर महाराज वृषभानुजी और कीर्तिरानी की महिमा गाई जा रही है परन्तु हे देवर्षि ! ये वृषभानु और कीर्ति कौन थे, जिन्हें राधारानी के माता–पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ?" नारदजी ने उत्तर दिया कि हे राजन ! वृषभानु और कीर्ति को राधारानी के माता–पिता बनने का सौभाग्य उन्हें बहुत बड़ी तपस्या और कृपा से प्राप्त हुआ। पूर्वजन्म में वृषभानुजी 'राजा सुचंद्र' थे एवं रानी कीर्ति 'कलावती' थीं। राजा सुचंद्र सूर्यवंशी राजा नृग के पुत्र थे। सुचंद्र को भगवान् का अंश माना जाता है, वह चक्रवर्ती सम्राट थे और कलावती तीन बहनें थीं, वे अर्यमा पितृश्वरों की मानसी तथा अयोनिजा कन्यायें थीं, ये पितृश्वर अंगिरा एवं स्वधा से उत्पन्न हुए थे। यद्यपि नारद जी ने बताया कि बड़ी कठोर तपस्या के कारण सुचन्द्र एवं कलावती को राधारानी के माता–पिता बनने का सौभाग्य मिला किन्तु वैष्णवाचार्य जैसे कि कृष्णदास कविराज जी चैतन्य चरितामृत में लिखते हैं कि कोई जीव तपस्या करके भगवान् का माता–पिता नहीं बन सकता। सिद्धांत यह है कि जब भगवान् अवतार लेते हैं तो नित्य वृषभानु और कीर्ति पृथ्वी पर आते हैं तो उनमे सुचंद्र और कलावती जी लीन हो जाते हैं, इनका भी तप था। उस तपाराधना की महिमा दिखाने के लिए कहा गया कि तपस्या के बल पर सुचंद्र और कलावती को राधारानी के माता–पिता बनने का सौभाग्य मिला। बहुत प्राचीन समय की बात है, दक्ष प्रजापति की सात कन्याओं में स्वधा नामक कन्या का विवाह अंगिरा के साथ हुआ था। पितृश्वरों की तीनों कन्यायें सनकादिक के श्राप से मनुष्ययोनि में आयीं। पितृश्वरों की ये कन्याएँ मानसी थीं, अयोनिजा थीं, सम्भोग से उत्पन्न नहीं हुयीं थीं, ये दिव्य कन्याएँ थीं, इनका नाम था – कलावती, रत्नमाला और मेनका, ये तीनों परम योगिनी, परम सुन्दरी तथा आराधनारूपा थीं। एकबार की बात है, ये तीनों कन्याएँ श्वेतद्वीप में भगवान् नारायण का दर्शन करने गयीं थीं। उन्होंने वहाँ भगवान् लक्ष्मीनारायण का दर्शन कर उनका स्तवन किया। उसी समय ब्रह्माजी के मानसपुत्र सनकादिक मुनीश्वर भी श्वेतद्वीप में भगवान् का दर्शन करने पहुँचे, ये तीनों कन्याएँ भगवान् के दर्शनजनित आनंद में ऐसी निमग्न थीं कि ये सनकादिक को प्रणाम करना भूल गयीं। उस समय भगवान् की ही इच्छा से सनकादिक ऋषि इन कन्याओं पर क्रुद्ध हो गए और उन्हें मनुष्ययोनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। उनके शाप से भयभीत हुई, इन कन्याओं ने सनकादिकों से क्षमा माँगी तो उन्होंने इन्हें अभयदान देते हुए वरदान भी दिया कि तुम लोग मनुष्ययोनि में भी तीन महाशक्तियों की जननी बनोगी।

विधाता की लीलायें तो आदि से अंत तक चलती ही रहती हैं। किसको कहाँ, कब और कैसे, क्या रूप देना है, ये लीलाधारी प्रभु की अद्‌भुत योजना का क्रम है। भगवल्लीलाओं को तो ब्रह्माजी भी नहीं समझ सकते फिर और कोई क्या समझेगा ? समय आने पर ये तीनों देवियाँ नर–योनि में प्रकट हुई। कलावती राजा सुचन्द्र की पत्नी बनीं। राजा सुचंद्र परम तेजस्वी चक्रवर्ती सम्राट थे, उन्होंने एकबार कलावती को साथ लेकर नैमिषारण्य के घोर जंगलों में गोमती नदी के तट पर दुष्कर तप किया। उनके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्हें वरदान दिया कि तुम दोनों द्वापर युग में राधारानी के माता–पिता बनोगे। ब्रह्माजी के वरदान के बाद वही राजा सुचंद्र द्वापर में महाराज वृषभानु के रूप में प्रकट हुए और उनकी पत्नी कलावतीजी 'महारानीकीर्ति' के रूप में प्रकट हुई। भलंदन नृप के यज्ञकुण्ड से कीर्तिजी का प्राकट्य हुआ था और ब्रज में महीभानजी के यहाँ वृषभानुजी प्रकट हुए। इन दोनों का विवाह सम्बन्ध नन्दबाबा ने कराया था। वृषभानुजी की ब्रज में तीन राजधानियां थीं – १.बरसाना २.बरहाना ३. रावल। बहुत से लोग श्रीजी का जन्म रावल में मानते हैं, वह भी ठीक है लेकिन बरसाने में भी अवश्य श्रीजी का जन्म हुआ है, इसे रसिक महात्माओं ने गाया है। श्रीजी के मंदिर बरसाना में राधाष्टमी के दिन होने वाली समाज में आज भी यह पद गाया जाता है।

बरसाने से दौरि नारि इक नन्द महर घर आई री।
आजु सखी मंगल में मंगल कीरति कन्या जाई री ॥

यह प्रमाण है और इस पद में अष्टछाप के प्रसिद्ध संत कवि नन्ददासजी ने भी बरसाने में श्रीजी की जन्मलीला का गाई है –

नन्द दास सुख को सुखसागर प्रगटी है बरसाने।

सब जग धाम, धाम पुनि जाको सो धाम पुजायो माँ ने॥

मदनमोहन सूरदासजी ने गाया है कि बरसाने में वृषभानुकुण्ड में कमल के भीतर से एक कन्या का प्राकट्य हुआ -

बरसानों बर सरोवर प्रगट्यो अदभुत कमल री।
वृषभानु किरण प्रकाश पोषत रहति प्रफुल्लित
सदा यह सरस सुन्दर अमल री।
सखी चहुदिसि केशरी दलकर्णिका आकार
राजित राधिका जस धवल री।
सूरदास मदनमोहन पिय रसिक मकरंद हित सेवत
सदा अलिन कोमल री॥

श्रीव्यासजी ने भी श्रीजी की जन्मलीला का गान किया है -

आज बधाई है बरसाने कुंवरि किशोरी जनम लियो,
सब लोक बजे सहदाने।
कहत नन्द वृषभानु राय सों और बात को जानै॥

आज बरसाने में बधाई गाई जा रही है क्योंकि कुंवरि किशोरी वृषभानुनन्दिनी ने जन्म लिया है। नन्दबाबा वृषभानुजी से कहते हैं कि तुमने तो इस लाली के कारण सारे ब्रज को खरीद लिया।

आज भैया बृजवासी सब तेरे हाथ बिकाने।
या कन्या के आगे कोटिक बेटन को-को अब माने॥

इसी तरह से अनेकों प्रमाण हैं

आज बधायो मंगलचार उमा रमा सहित शची सरस्वती दरसन पावैं बार।
धनि कीरति धनि वृषभानो, धनि बरसाने॥

ये सब प्रमाण हैं कि बरसाने में राधारानी का जन्म हुआ है। रावल में भी कल्प भेद से श्रीजी का जन्म हुआ है।

सूरसागर में सूरदासजी ने भी बरसाने में राधारानी के प्राकट्य का वर्णन किया है, इनके कथनानुसार बड़े-बड़े ऋषि राधाष्टमी के पहले ही बरसाने में आये हैं और रात्रि को वे सभी वृषभानु महल के सिंहपौर पर बैठकर प्रतीक्षा कर रहे हैं कि भगवती राधा कब प्रकट होंगी? सूरदासजी वर्णन करते हैं

जनम लियो वृषभानु गोप के बैठे सब सिंह द्वार री।
लगन घड़ी बलि नक्षत्र शोधि के गुरुजन कियो विचार री॥

ऋषि-मुनिगण सिंहपौर पर बैठे हैं, इतने में एक सखी दौड़ी-दौड़ी आती है।

कबहुँक मनि आँगन आगे रहि बोलत द्विजवर बैन।
कबहुँक सुधि पावत सुभवन में पुत्र जनम के चौन॥
दौड़ी-दौड़ी आई है जहाँ बैठे बलि ग्वाल।
वेगि पुकार कह्यो मुख आलि प्रगटी सुता लघु बाल॥
हमारे कोटि पुत्र की आशा पूरन करी वृषभान।
तब हँसि तारी दै गुरुजन को देख्यो जन्म विधान॥

सूरदासजी वहाँ ऋषिगणों का नाम वर्णन करते हैं

करभाजन, श्रृंगी, गर्ग मुनि नक्षत्र लग्न बलि शोध।
भय अचरज ग्रह देखि परस्पर कहत सबन प्रतिबोध ।
सुद भादों शुभ मास अष्टमी अनुराधा के शोध॥

अनुराधा नक्षत्र था, ऋषियों ने राधारानी की जन्म कुण्डली तैयार की। श्रीजी के जन्मोत्सव पर नव योगेश्वर भी बरसाने में पधारे थे। उन योगेश्वरों ने कहा कि इस बालिका का नाम 'राधा' होगा। राधारानी के समान सुन्दरी त्रिलोकी में कोई नहीं है। न लक्ष्मी, न पार्वती और न कामदेव की पत्नी रति। सभी सनातन ऋषि राधाष्टमी के दिन वृषभानु भवन में आकर राधारानी के जन्म की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी ऋषि रात भर जाग रहे थे। दुर्वासाजी बोले - "अरे ब्रजवासियों ! मैं श्रुति प्रमाण से कहता हूँ, मुझे निश्चित पता है कि श्रीराधिका के कारण ही नंदगांव में नन्दबाबा के भवन में कन्हैयालाल प्रकट हुए हैं। ये युगल राधामाधव ब्रज में विहारकर प्रेम-माधुर्यमय रसमयी लीलाएँ करेंगे। जन्माष्टमी के दिन जो रस नन्दभवन में उमगा था, उससे अधिक रस बरसाने में राधारानी के जन्म पर प्रवाहित हुआ। कन्या के जन्म की बात को सुनकर महाराज वृषभानुजी को जो आनंद हुआ, उसका वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि -

पूर्णानुरागरसमूर्तितडिल्लताभं
ज्योतिः परं भगवतो रतिमद्रहस्यम्।
यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानुगेहे
स्यात्किङ्करी भवितुमेव ममाभिलाषः॥

(श्रीराधासुधानिधि - ४०)

आज कौन प्रकट हुआ है, उसका क्या परिचय है ? रसिकजन कहते हैं कि पहले ब्रह्मतेज है, ब्रहतेज से आगे नीलतेज है और नीलतेज से आगे गौरतेज है, जो श्रीराधिकारानी हैं, वह परिपूर्ण प्रेमरस की वह मूर्ति हैं, जिनकी कान्ति विद्युल्लताओं सदृश देदीप्यमान है, वह गौर तेज भगवान् श्यामसुन्दर की नीली ज्योति से भी परे है, वह रहस्यमयी ज्योति अनुरागमय प्रेमसार से युक्त है, वे अपनी कृपा से ही आई हैं, उनकी करुणा उनको इस धरा पर प्रकट होने के लिए विवश कर देती है, इसीलिये उनको परम करुणामयी कहा जाता है। रसिकों ने लिखा है कि श्रीजी का प्राकट्य एकमात्र कृपा-करुणा से वृषभानुजी के भवन में उनका प्राकट्य हुआ। ऐसी श्रीराधा, वेद भी जिनकी महिमा का गायन नहीं कर पाते हैं, जो साक्षात् अनंत करुणा की स्वरूपा सहज स्नेहमयी, दया-कृपामयी, वात्सल्यमयी हैं, जिनकी बड़ी दिव्य छवि है, तीव्र लावण्य से जो अत्यंत ललित हैं, वे रस-समुद्र की सार श्रीराधिका वृषभानुभवन में प्रकट होती हैं।

राधाष्टमी–महोत्सव का अभिन्न अंग सांकरीखोर की मटकी लीला

बरसाने की राधाष्टमी के अंतर्गत चतुर्दशी तिथि को आयोजित होने वाली साँकरी खोर की मटकी लीला का विशेष महत्व है। अस्सी वर्ष पूर्व मटकी लीला के इस महोत्सव के दर्शनार्थ सम्पूर्ण मथुरा जिले का अवकाश हुआ करता था और जिले के समस्त ब्रजवासियों का अपार समुदाय उमड़ पड़ता था किन्तु बीच में साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण सम्पूर्ण मथुरा जिले के ब्रजवासियों का आगमन बाधित हो गया। वर्तमानकाल में बरसाने के निकटवर्ती ग्रामों के थोड़े ही ब्रजवासी आ पाते हैं। मतभेद का कारण भी बहुत छोटा ही था। मटकी–लीला के आयोजन में रासमण्डली के लीलास्वरूप में श्यामसुन्दर का मुकुट बायीं ओर हो कि दाहिनी ओर हो, इसी बात को लेकर ऐसा साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ा कि कोर्ट में मुकदमा पेश हुआ। उस जमाने के अंग्रेज जज ने खीजकर फैसला दिया कि मुकुट न दाहिनी ओर करो, न बायीं ओर बल्कि सीधा रखो। इस फैसले से कृष्णानन्दी वैष्णव चिढ़ गए क्योंकि सीधा मुकुट तो भगवान् राम का होता है। जज के फैसले के बाद भी निम्बार्क संप्रदायी एक साधु कुएँ में कूद पड़े और अपने हठ पर अड़े रहे कि मुकुट तो बायीं ओर ही रहेगा। आत्महत्या की हद तक आने पर अंग्रेज जज ने कहा कि ठीक है मुकुट बायीं ओर रखो लेकिन वल्लभकुल के वैष्णवों को आदेश दिया कि आप लोग अपनी ब्रजयात्रा अलग निकालो। इसके पूर्व इसी मटकी लीला को सभी सम्प्रदायानुवर्तीजन मिलकर एक साथ मनाते थे और वल्लभकुल की विशाल ब्रजयात्रा का भी बरसाना आगमन होता था, जिसमें बीस से तीस हजार यात्री तक सम्मिलित होते थे। परन्तु कोर्ट के फैसले के बाद वल्लभकुल की यात्रा का इस विशेष उत्सव पर आगमन स्थगित हो गया और इसके साथ ही ब्रजवासियों का जो अपार जनसमूह यहाँ एकत्रित होता था, वह भी बहुत कम हो गया। राधाष्टमी से जुड़ी इस मटकी–लीला का वर्णन ब्रजविभूति भगवदीय श्रीनारायण भट्टजी ने अपने ग्रन्थ "ब्रजोत्सव चंद्रिका" में "वार्द्धकी लीला" के नाम से किया है। ब्रजवासियों के द्वारा आगे चलकर इसका हिंदी अपभ्रंश "बूढ़ी लीला" के नाम से हुआ।

राधाष्टमी महोत्सव एवं लीला दर्शन

२८ अगस्त २०१७ – नाटिका (भक्त नरसीजी) २९ अगस्त २०१७ – राधाष्टमी महोत्सव, **राधाष्टमी से लेकर अगले ८ दिनों तक होने वाली परम्परागत दिव्य लीलाओं व विभिन्न दिव्य लीलास्थलों के दर्शन** –

१) ३० अगस्त २०१७ मोर कुटी, जहाँ युगलसरकार ने मयूर–नृत्य किया था, वहीं लड्डूलीला–दर्शन।

२) ३१ अगस्त २०१७ विलासगढ़ व झूलनलीला–दर्शन।

३) ०१ सितम्बर २०१७ सांकरीखोर–दर्शन, दान एवं चोटीलीला एवं संध्या को प्रेमसरोवर गाजीपुर में नौकाविहार– लीला।

४) ०२ सितम्बर २०१७ ऊँचा गाँव ललिता अटा पर ललिता विवाह उत्सव, संध्या को प्रियाकुण्ड जहाँ राधारानी ने विवाह के पीले हाथ धोये थे, वहाँ नौकाविहारलीला–दर्शन, रात्रि में मानगढ़ पर मानलीला–दर्शन।

५) ०३ सितम्बर २०१७ दधिदानलीला–दर्शन साँकरीखोर।

६) ०४ सितम्बर २०१७ – नागाजी की कदम खंडी की लीला दर्शन।

७) ०५ सितम्बर २०१७ महारास–दर्शन करहला।

श्री माताजी गौशाला

श्री माताजी गौशाला के बायो गैस प्लान्ट द्वारा जैविक खाद, भोजन बनाने वाली गैस तथा बिजली का उत्पादन–

श्री माताजी गौशाला जहाँ अभी प्राथमिक स्तर पर १३५० घन मीटर की क्षमता वाला बायोगैस प्लान्ट कार्यरत है, जहाँ लगभग ३० टन गोबर तथा पानी का घोल प्रतिदिन डाला जाता है, जिससे उत्पन्न होने वाली बायो गैस को शुद्धिकरण करके पुनः संग्रह किया जाता है, जिसे आवश्यकतानुसार बिजली उत्पादन तथा गोवंश के लिए खाद्यपदार्थ बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसमें अवायवीय रूप से सड़े हुए गोबर के घोल को निकालकर एरोबिक माइक्रोबियल को अच्छी तरह मिलाकर पूरी तरह से सड़ाया जाता है। इससे जो उत्पाद तैयार होता है, वह है देशी गाय के गोबर की खाद। इस उत्पाद के उपयोग से खेती व रसोई और घर के बगीचों में बहुत ही अच्छे परिणाम सामने आये हैं। यह उत्पाद १,२,५,४० और ५० किलो की पैकिंग में उपलब्ध है।

बायो गैस प्लान्ट द्वारा निर्मित उत्पाद की कुछ विशेषताएं

१. गन्ध रहित होने के कारण इनडोर उपप्रवाह में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है।

२. यह हर प्रकार के मैक्रो और सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों को प्राप्त करवाता है।

३. यह मिट्टी की पानी रोकने की क्षमता को बढ़ाता है।

पूर्णचंद्रानना की कान्ति से सुशोभित हुए कृष्णचन्द्र

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (१/५/१९९८) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी नवीनाश्री, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

रसिकों ने लिखा है कि बिना राधिकारानी के जो श्रीकृष्ण की उपासना करता है, उसे तो अमावस्या के चन्द्रमा का उपासक समझो। चन्द्रमा अमावस्या में रहता अवश्य है लेकिन उसकी चांदनी नहीं रहती है, कोई शोभा नहीं रहती है।

राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति।
किञ्च श्यामरतिप्रवाहलहरीबीजं न ये तां विदु-
स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः॥

(श्रीराधासुधानिधि - ७९)

पूर्ण चन्द्रमा का परिचय कोई बिना पूर्णिमा के चाहता है। भला चांदनी के बिना चाँद की क्या शोभा है, उसी तरह से बिना वृषभानुजा किशोरी जी के श्रीकृष्णचन्द्र की क्या शोभा है? अगर ये भी देखा जाए कि कृष्ण चन्द्रमा हैं तो चन्द्रमा की शोभा चांदनी से होती है। जितनी चांदनी होगी, उतना ही चन्द्रमा खिलेगा। अमावस्या को बिल्कुल चांदनी नहीं होती इसलिए चन्द्रमा कुछ नहीं खिला। आगे ज्यों-ज्यों तिथि बढ़ती है तो त्यों-त्यों चाँद सुन्दर लगने लगता है क्योंकि उसकी चांदनी बढ़ती जाती है। अब प्रश्न है कि चांदनी है क्या ? चांदनी वृषभानुजा हैं। कैसे, कृतिका नक्षत्र पर जब सूर्य रहता है, जिसको कार्तिक मास कहते हैं, उस समय सूर्य कृतिका पर आता है वैसे ही ज्योतिषशास्त्र में गणना अश्विनी से प्रारम्भ होती है लेकिन कुछ लोग कृतिका से भी शुरू करते हैं तो कृतिका से जब आप गणना शुरू करेंगे तो सामने चौदहवाँ नक्षत्र राधा पड़ता है। विशाखा नक्षत्र का नाम राधा है। अमर कोष में लिखा है - **"वैशाखो माघो राधो"** इसका दूसरा प्रमाण यह है कि विशाखा के बाद जो दूसरा नक्षत्र आता है, उसका नाम है अनुराधा। कृतिका पर जब सूर्य रहता है तो सामने राधा नक्षत्र रहता है, उस समय सम्पूर्ण चांदनी प्रकाशित होती है और सम्पूर्ण चांदनी आती है राधा नक्षत्र पर। वैसे भी कहा गया है कि सूर्य की सुषुम्ना नाम की किरणें चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं। चांदनी क्या है, यह भानुजा है और उस भानुजा से आलिंगित चन्द्रमा सुशोभित हो जाता है। यदि उस चन्द्रमा से कृष्ण रूपी चाँद मिलित न होवे तो उस चाँद की क्या शोभा होगी, कुछ भी नहीं होगी। इसी तरह से जब सूर्य राधा नक्षत्र पर आते हैं तो उस समय चन्द्रमा कृतिका पर रहते हैं और अमृत की वर्षा करते हैं। इसीलिये ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से भी, शब्द शास्त्र की दृष्टि से भी वृषभानुजा चांदनी हैं जो केवल श्रीकृष्ण की शोभा बढाती हैं, उनके बिना श्रीकृष्ण की कोई शोभा नहीं होती है। इसलिए रसिकों ने कहा - "राकां विना कांक्षति" भला पूर्णिमा के बिना अमावस्या के दिन कोई चाँद की अभिलाषा करता है तो क्या लाभ है, उसको कुछ रस प्राप्त नहीं होता है। **"सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना कांक्षति"** अब कोई पूछे कि चांदनी से ही चाँद की शोभा क्यों होती है तो इसका कोई उत्तर नहीं है इसीलिए श्रीकृष्ण राधिकारानी का संपर्क पाकर के धन्य हो जाते हैं। श्रीराधारानी के विषय में ऋग्वेद में भी उपनिषद् है - राधिकोपनिषद, अथर्ववेद में भी है - राधिकातापनी उपनिषद्। ये सब जितने भी उपनिषद् हैं, इनमें श्रीजी के तत्व का वर्णन किया गया है। वस्तुतः जो श्रीकृष्ण तत्व की प्रकाशिका हैं वह हैं वृषभानुजा, जैसे चाँद की प्रकाशिका चांदनी है। इसलिए चाँद अपनी नित्य चांदनी को पाकर धन्य हो जाता है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। श्यामसुन्दर को राधारानी का सामीप्य लीलाकाल में प्राप्त होता है, यह प्रेम का स्वभाव है। जो सनातन आत्माराम है, उसके बारे में भगवान् ने गीता में कहा है -

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

(गीता ५/२४)

जो आत्मसुख (अन्तर्सुख) की अनुभूति करता है, जो बाह्यसुखों से अनासक्त है, वह आत्माराम बन सकता है। हम जैसे लोगों का सुख तो बाहर है, लड्डू मिलने पर प्रसन्न हो जाते हैं, नोटों की गड्डी पाकर बड़े प्रफुल्लित हो जाते हैं, एक पारा खून बढ़ जाता है। कोई मल-मूत्र का मैथुनीभोग मिल गया तो बड़े खुश हो जाते हैं, ये सब आत्माराम के लक्षण नहीं हैं, यह तो गड़बड़ मामला है, धोखा है, झूठ है। आत्माराम को कहीं रमण करना ही नहीं चाहिए क्योंकि आत्माराम तभी बनता है जब वह लड्डूराम-पूड़ीराम, धनीराम-पैसाराम आदि न हो। जो कौड़ीमल-टकामल, भोगीमल-भोगीराम हैं, वे आत्माराम नहीं हो सकते। रमण कहाँ करता है मनुष्य? जहाँ उसको सुख मिलता है, जैसे - स्वादिष्ट भोजन में सुख मिल रहा है तो हम उसमें रमण कर रहे हैं। जहाँ सुख मिलता है, प्राणी वहीं रमण करता है, ये एक नियम है। बिना सुख के रमण नहीं होगा। बहुत से लोग ऊँची-ऊँची बातें बनाकर कहते हैं कि हम वृन्दावनवास करेंगे, हमारा मन तो वृन्दावन में ही रहता है, लेकिन उनका मन संसार की आसक्तियों में भटक रहा है, ऐसे लोग केवल अपने-आपको को धोखा

देते हैं। अविद्या माया की गाँठ को हमलोग अनादिकाल से आज तक तोड़ नहीं पाये हैं, हम भाषण देते हैं कि शरीर से अलग हट जाओ लेकिन जब लड्डू मुँह में जाता है तो मीठा लगता है और जीभ में पानी आता है और हम उसमें रमण करने लग जाते हैं, अविद्या की गाँठ कम नहीं हो रही है, बड़े-बड़े साधन करने के बाद भी मोहाज्ञान की गाँठ नहीं टूटती है। अगर अविद्या की गाँठ नष्ट हो जाएगी तो उसका लक्षण है

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥

(गीता १४/११)

हर इन्द्रियों में प्रकाश आ जायेगा। मुँह में लड्डू रख दो तो कुछ प्रभाव नहीं होगा, नग्न स्त्री के साथ शयन करने पर भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि अंत:करण में प्रकाशस्वरूप श्रीभगवान् ही विराजते हैं, इन्द्रियों से प्रकाश निकलता रहेगा, ऐसे शुद्ध व्यक्ति की सन्निधि में आने वाले अशुद्ध लोग भी विशुद्ध हो जायेंगे, जैसे-श्रीहरिदासठाकुर के पास एक विश्वसुन्दरी कामभाव से गई थी परन्तु वह शुद्ध हो गयी।

जब आत्मिक सुख मिलेगा तब तुम अन्दर रमण करोगे। आत्मा में रमण करने से अंत:करण में दिव्य प्रकाश होगा और बाह्यविषयों में रमण करने से हृदय में अन्धकार छा जाएगा, जिससे अवश्य सर्वनाश होगा। अत: जो अन्तराराम बनने के इच्छुक साधकजन हैं, उनके लिए भी नियम है कि वे बाहर रमण नहीं कर सकते, फिर जो सनातन आत्माराम भगवान् हैं, वह कैसे बाहर रमण करेंगे ! ये तो कदापि संभव ही नहीं हो सकता लेकिन यहाँ शुकदेवजी ऐसा ही कहते हैं क्योंकि यह लीला-वैचित्री है, जहाँ असंभव भी संभव हो जाता है, इसे हम जैसे साधारण लोग नहीं समझ सकते।

यह अत्यंत सूक्ष्म बात है कि एक तो होता है काम अर्थात संसारी काम और दूसरा है इस काम का मूल 'अधिदैव काम' और भगवान् श्रीकृष्ण को 'साक्षात् मन्मथमन्मथ:' कहा गया। संसार को नचाने वाला कामदेव चींटी से लेकर ब्रह्मा तक को नचाता है। काम जब चढ़ता है तो आदमी पागल हो जाता है, क्या विद्वान, क्या वृद्ध, क्या जवान, वृक्ष-लतायें आदि चराचर समस्त जीव कामावेश में परस्पर मिलते हैं, जैसे - स्त्री-पुरुष मिलते हैं, उसी प्रकार वृक्ष-लताओं में भी परागण होता है। प्राकृत काम का मूल है - अधिदैव, यह प्राकृत काम नहीं है। उसका प्रमाण ये है कि जब महादेवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया जिससे कामदेव (सांसारिक काम) जल गया। कामदेव गया था महादेवजी का चित्त चंचल करने के लिए, उसके प्रभाव से सारा संसार काममय हो गया, उसने ऐसी शक्ति फैलाई कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्त्री-पुरुष, यहाँ तक कि ताल-तलइया, पशु-पक्षी आदि सभी जड़-चेतन जीव काममय हो गये।

अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड ८५)

उस समय कामदेव ने महादेवजी के ऊपर बाण मारा। अपनी संपूर्ण शक्ति से पांचों बाणों को एक आम के वृक्ष के ऊपर चढ़ करके शिवजी के वक्ष:स्थल पर आघात किया। जब शिव के वक्ष:स्थल में जाकर बाण लगे तो उनकी समाधि खुल गयी। इसके पूर्व वह भगवदानंद में डूबे थे, उसमे विक्षेप होने के कारण उन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ और तीसरा नेत्र खोलकर उन्होंने कामदेव को भस्मीभूत कर दिया। एक तरफ तो उन्होंने कामदेव को जला दिया और उसके बाद शिवजी का गिरिजा के साथ विलास हुआ। **हर गिरिजा बिहार नित नयऊ।** (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -१०३) अब प्रश्न है कि जब काम जल गया तो शिव जी का गिरिजा के साथ विलास कैसे हुआ? इस बात को रावण ने शिवजी की स्तुति में कहा है कि जब शिवजी ने प्राकृत काम को जला दिया तो इसके बाद दिव्य काम आया, जिसे '**मन्मथ का मन्मथ**' कहते हैं। इसीलिये शुकदेव जी ने भागवतजी में श्रीकृष्ण के लिए '**साक्षान्मन्मथ मन्मथ**' शब्द प्रयोग किया, इसमें तीन शब्द हैं - एक तो मन्मथ, दूसरा मन्मथ का मन्मथ और तीसरा जो सबका मूल काम है - वह साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं। एक तो वह काम था जिसको शिवजी ने जला दिया, एक दूसरा काम था जिसके कारण उन्होंने पार्वतीजी के साथ विलास किया और तीसरा सबका मूल काम 'साक्षात् श्रीकृष्ण' हैं, जो रसराज हैं, इसीलिये ब्रजलीला के लिए साक्षात् महादेवजी भी तरसते हैं। प्रेम जहाँ भी होगा, वहाँ लीला अवश्य होती है और लीला में जितनी वैचित्री होती है, उतनी ही अधिक प्रेम में वृद्धि होती है। जैसे - श्रीकृष्ण को श्रीजी के अंचल की प्राप्ति ब्रज के कई स्थलों पर हुई, वैसे ही महात्माओं ने लिखा है कि वन-विहार के समय भी श्रीकृष्ण को श्रीजी की अंचल-सुगंधि तथा अंचल की प्राप्ति होती है, क्योंकि प्रात:काल के समय श्रीराधा तथा श्रीमाधव एक कुञ्ज से निकलते हैं और कुञ्ज में शयन करने के बाद वृन्दावन की शोभा देखने के लिए चलते हैं। प्रभात-वेला है, बड़ा सुन्दर समय है। चारों ओर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। सारा वृन्दावन पुष्पमय हो रहा है। प्रात:कालीन शीतल, मंद, सुगंधित वायु बह रही है। ऐसे में श्रीवृन्दावन का दर्शन करने के लिए दोनों लाल-ललना जा रहे हैं। श्रीलाड़ली जी वैसे तो सदा ही आनंद भरी, प्रेम भरी, रंग भरी, रस भरी रहती हैं परन्तु यदि बसंत ऋतु का आगमन हो जाये तो वन विहार की और अधिक सुन्दरता बढ़ जाती है और यह बहुत अधिक रसमय हो जाता है।

-क्रमश:

भगवत्कृपा का फल - 'सत्संग'

(ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)

गोस्वामी तुलसीदासजी की वाणी में

बिनु सत्संग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -३)

सत्संग की प्राप्ति होना, ये ठाकुरजी की अतिशय कृपा का लक्षण है। विशेष भगवत्कृपा का फल ही सत्संग के रूप में दिखाई पड़ता है। सत्संग में बैठना बहुत बड़ी कृपा है, अन्यथा इस भौतिकवाद में, इस जगत की चकाचौंध में कहाँ भगवान् और कहाँ सत्संग, किसको स्मरण है और किसको समय है ? ये बहुत बड़ी कृपा है, इस कृपा को समझें, इसका पूरा-पूरा लाभ लें और पूरा-पूरा लाभ यही है कि हम जो भी कुछ सुनें, उसे जीवन में धारण करें। कथा-श्रवण का संयोग बिना श्रीकृष्ण-कृपा के संभव नहीं है। यदि भगवत्कृपा का कोई जाग्रत लक्षण है संसार में तो वह सत्संग की प्राप्ति ही है। सत्संग-श्रवण की सार्थकता मनन और निदिध्यासन से ही होती है। हमने जो सुना उस श्रुत-विषय का यदि मनन नहीं किया जाएगा, निदिध्यासन निश्चयात्मिका बुद्धि से 'उस विषय को जीवन में उतारने का प्रयास' नहीं किया जायेगा तो वह श्रवण सफल नहीं होगा।

श्रीनाभाजी के शब्दों में

श्रीभक्तमालजी में बहुत सुन्दर बात भक्तमालकार ने कही है -

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरी हू कौ,
बारि दै विचार वारि सींच्यो सत्संग सों॥

भक्ति रूपी जो वृक्ष है, जब संत-समागम से इसका बीज पनपता है चित्त में, जिस समय भक्ति का स्वरूप पौधे के रूप में होता है तो जैसे पौधे को सींचने के लिए बहुत सावधानी चाहिए, समय-समय पर पानी देना, समय-समय पर खाद देना, समय-समय पर उसे पशु आदि से बचाना, नहीं तो कोई भी जानवर खा जाएँगे छोटे से पौधे को। संत-समागम से जब चित्त में भक्ति का बीज अंकुरित होता है और पौधे का रूप लेता है तो जैसे छोटे से पौधे को बकरी आदि जानवरों का बहुत भय होता है कि कब खा जाएँ पता नहीं। वैसे ही जब तक भक्ति हमारे चित्त में केवल एक पौधे के रूप में है, तब तक इस भक्ति रूपी पौधे को माया रूपी बकरी का बहुत भय रहता है। पता नहीं ये माया कब हमारे भक्ति के पौधे को चर जाए, खाकर के समाप्त कर दे। जैसे पौधों की सुरक्षा में बारी लगायी जाती है, खेतों में काँटे की बारी चारों ओर खड़ी की जाती है कि कोई जानवर न आ जाये, कोई खा न जाए, वैसे ही जब तक भक्ति रूपी पौधे ने हमारे चित्त में अभी वृक्ष का रूप नहीं लिया है, तब तक इसको माया रूपी बकरी का बहुत भय है, इसके लिये बारी लगाओ, किसकी बारी लगायें ? **"बारि दै विचार"** विचारों की बारी 'सद्विचारों का घेरा' लगाना बहुत जरूरी है भक्ति रूपी पौधे में। 'विचार' से तात्पर्य है - मनन। हमने सुन लिया, इससे भक्ति का बीज अंकुरित तो हो गया लेकिन जब तक सुने हुए विषय में मनन रूपी बारी नहीं लगायेंगे तो सुना हुआ 'विषय' यहाँ से बाहर निकलते ही समाप्त हो जाएगा, टिकेगा नहीं चित्त में। इसलिये प्रह्लादजी ने नवधा भक्ति में पहला अंग 'श्रवण' माना और दूसरा अंग 'कीर्तन' कहा है। बहुधा लोग सुन तो लेते हैं लेकिन सुनने के बाद 'कीर्तन' यानि उसकी चर्चा नहीं करते, सुने हुए विषय का यदि कीर्तन नहीं किया जाएगा अर्थात् उसकी चर्चा नहीं की जाएगी तो वह श्रवण स्थायी नहीं रहेगा जीवन में। थोड़े ही दिन में भूल जाओगे। इसलिए विचारों की बारी लगाना बहुत जरूरी है और इसको हमेशा सत्संग से सींचना। चाहे पौधा वृक्ष भी बन जाए तो भी उसको जल की आवश्यकता सदैव रहती है। भले ही मनुष्य जीवन्मुक्त स्थिति पर पहुँच जाए लेकिन वहाँ भी उसको सत्संग की आवश्यकता तो सदा ही रहेगी। शुकदेवजी, सनकादिक मुनि ये सब जीवन्मुक्त महापुरुष हैं लेकिन उस अवस्था पर पहुँचने के बाद भी निरन्तर वे अपने इस भक्ति रूपी तरु को सत्संग का जल देते ही रहते हैं, जिस दिन न दें तो यह तरु (वृक्ष) सूख जाएगा।

श्रीमद्भागवतानुसार

मंगलाचरण में भागवतकार का कथन है

पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

(भा.१/१/३)

सत्संग 'नाम, रूप, लीला, गुण' रूपी जल की बहुत आवश्यकता है, बार-बार आवश्यक है, नहीं तो भक्ति रूपी पौधे को सूखने में समय नहीं लगेगा, माया रूपी बकरी को इसे चरने में भी समय नहीं लगेगा, बहुत सावधानी चाहिए। बीज तो पनप गया पर अब हम उस पौधे को कैसे वृक्ष के स्वरूप तक ले जायें और वह

वृक्ष सदा ही हमारे जीवन में हरा-भरा लहलहाता रहे, उसके लिए सत्संग का जल निरन्तर देते रहना बहुत आवश्यक है। सत्संग को ध्यानपूर्वक श्रवण करें और श्रवण के बाद सुने हुए विषय पर विचार अवश्य करें। विचार केवल एक विचार ही बनकर रह गया तो विचार की सफलता नहीं है। विचार की सार्थकता 'सफलता' तभी है जब वह विचार हमारे जीवन में क्रियान्वित 'क्रियात्मक रूप से घटित' हो जाए, आत्मसात होकर आचरण में आ जाए। कल्याण का सबसे उत्तम मार्ग क्या है ? आध्यात्मिक मार्ग, जिसका दूसरा नाम भक्तिमार्ग है। उस अध्यात्मिक योग का लक्षण क्या है ?

"योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च॥"

(श्रीमद्भागवत ३/२५/१३)

जहाँ सुख और दुःख सभी द्वंदों से उपरामता आ जाए, उस स्थिति का नाम '**आध्यात्मिक योग**' है। सुख-दुःख का अनुभव करने वाला शरीर नहीं है। प्राणात्मा निकल जाए तो शरीर यही पड़ा रहता है, उसमें आप चाहे भाला, बर्छी, तलवार घुसाइए, पोस्टमार्टम करिये लेकिन शरीर को सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता है। सुख-दुःख का अनुभव करने वाली इन्द्रियाँ भी नहीं हैं। सुख-दुःख का अनुभव करने वाला मन है। पातंजलि भगवान् ने योगदर्शन में कहा है "मन की अनुकूल स्थिति का नाम सुख और मन की प्रतिकूल स्थिति का नाम दुःख है।" सुख-दुःख का अनुभवकर्त्ता जब मन है तो इस मन से कैसे अपना पीछा छुड़ायें ? बोले - सबसे अच्छा उपाय यह है कि मन को भगवच्चरणों में समर्पित कर दिया जाये, लेकिन इस मन का भगवच्चरणों में समर्पण हो नहीं पाता है, कठिन है, संतजनों की कृपा से ही होता है।

श्रीमीराजी के भाव

मीराजी की वाणी में एक बहुत सुंदर पद है - "**यो मन मेरो बड़ो रे हरामी, ज्यों मदमातो हाथी।**" ये मन मतवाले हाथी की तरह बहुत हरामी है। हाथी अगर पागल हो जाए तो किसी के वश में नहीं होता है, बहुत शक्ति होती है। वैसे ही हमारा-तुम्हारा मन संसार की तृष्णाओं (कामनाओं, आशाओं) में पागल हो चुका है, हमलोगों के वश में नहीं है, वासनाओं के वश में है। लेकिन देखो, पागल हाथी को भी वश में करने का एक ही उपाय है - "हाथी का सबसे कमजोर भाग मस्तक होता है, हाथी को चलाने वाला महावत उस हाथी के मस्तक पर अंकुश (पैना-सा हथियार) मारता है तब वह वश में होता है। मीरा जी कहती हैं कि भगवन् ! मेरा मन भी पागल हाथी की तरह है लेकिन जब से सद्गुरुजनों का कर-कमल रूपी अंकुश इस मन के उपर पड़ गया है तब से यह थोड़ा-बहुत सम्भला है। "**सतगुरु हाथ धर्‌यो सिर ऊपर, अंकुश दै समझाती। साथी म्हारा जनम मरण रा साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती॥**" 'मिथ्या संसार की वस्तुओं में मन का लगना ही इस मन रूपी हाथी का मतवालापन है।' मीराजी ने इस बात को समझा और कहा - "**यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती। दोउ कर जोड़याँ अरज करूँ छूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती॥**" हे नाथ ! यदि आपके चरणों में एकबार ये मन लग जाये तो मिथ्या संसार में भटकना सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाए। जब भगवत्कृपा हो तब ही इस मन का योग भगवच्चरणों में हो सकता है और जब कृपा हो जाए तो ऐसी-ऐसी निकृष्ट स्थितियों से मन उठ जाता है कि फिर उसको श्रीठाकुरजी को छोड़कर कुछ भी नहीं सूझता-बूझता।

श्रीभक्तमालग्रन्थानुसार -

भक्तमालकार ने एक बहुत सुन्दर प्रकरण लिखा है- श्रीमद्वल्लभसम्प्रदाय के अष्टछाप के महाकवियों में भगवदीय श्रीकृष्णदासजी महाराज एकबार श्रीनाथजी के किसी कार्य से आगरा गये हुए थे। वहाँ आगरा शहर में वेश्याओं के मोहल्ले से वे निकले। एक वेश्या बहुत सुन्दर गा रही थी, उसकी वाणी में ऐसा सहज आकर्षण कृष्णदासजीमहाराज को प्रतीत हुआ कि वही उनके पैर ठिठक गये और खड़े होकर उसका गान सुनने लगे। साथ के लोगों ने कहा - "महाराज ! वेश्याओं का गान-टान सुन रहे हो, दुनिया क्या कहेगी, चल दीजिए यहाँ से।" कृष्णदासजी ने उन लोगों की बात नहीं मानी और अट्टालिका पर वेश्या के यहाँ पहुँचे, उसका नृत्य-गान देखा, बहुत मन प्रभावित हुआ, सोचने लगे कि ये किसी कर्म के पापवश वेश्या बन गयी है, अन्यथा इसका गुण और इसकी कला तो हमारे श्रीनाथजी के योग्य है। उस वेश्या ने जब नृत्य-गान किया तो उसके हाथ में कृष्णदासजी महाराज ने १० रुपये रख दिए। आज से ५०० साल पहले १० रुपये की कीमत कितनी होगी! वह वेश्या बहुत प्रभावित हुई। फिर उस वेश्या से बोले कि आगरा में अमुक स्थान पर हम ठहरे हुए हैं, तुम रात्रि के समय अपने सारे समाज के साथ आना और एक रात्रि हमें भी अपना नृत्य-गान दिखाना, यह कहकर पुनः उसके हाथ में १० रुपये रख दिए। उस वेश्या को लगा कि ये तो बड़े रिझवार व्यक्ति हैं और ऐसा धनिक, ऐसा कोई साधु मैंने आज तक देखा नहीं है। अभी थोड़ी-थोड़ी देर में इसने २० रुपये मुझे दे दिए। वेश्या का तो काम ही है - धन के लोभ में गाना-नाचना। रात्रि के समय कृष्णदासजी महाराज के शिविर में वह वेश्या गयी। सारी रात्रि नाच-गान चलता रहा। साथ के लोगों ने कृष्णदासजी की बहुत बुराई की - "देखो, इनकी बुद्धि खराब हो गई है, अब इनको वेश्या का नाच-गान अच्छा लग रहा

है।" कृष्णदासजी महाराज ने उस वेश्या के हाथ में १०० रुपये दिए और बोले – "देवी! मैं तो अपने साँवले सेठ का एक छोटा–सा मुनीम हूँ। अगर एकबार मेरे सेठजी को रिझा दोगी तो मालामाल हो जाओगी, फिर दुनिया में किसी को रिझाने की आवश्यकता नहीं रहेगी तुम्हें। हमारे सेठ जी जितने रिझवार हैं, उतना तो संसार में तुम्हारा गान और नृत्य की कलाओं को समझने वाला भी कोई नहीं होगा।" अब उस वेश्या ने जब सुना कि ये तो मुनीम हैं अगर सेठ जी रीझ जाएँ तो सच में मालामाल हो जाऊँगी। उस वेश्या ने कहा – "महाराज ! आपके सेठ जी को रिझाने के लिए मैं आपके साथ अवश्य चलूँगी।" कृष्णदासजी बोले – "ये तो बहुत उत्तम बात होगी, तुम भी हमारे साथ चलो।" अब कृष्णदासजी महाराज उस वेश्या को लेकर गोवर्धन (श्रीगिरिराजजी) में आये। अब सब लोग अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार उल्टी–सीधी (अनाप–शनाप) बातें कहने लगे कि देखो ! इनकी बुढ़ापे में बुद्धि खराब हो गई, मंदिर में सत्संग, कथा–कीर्तन तो दूर अब वेश्याओं का नाच होगा। कृष्णदासजी महाराज ने उस वेश्या से कहा – "देखो, हमारे सेठजी के सामने तुम वही गाना जो तुमको अनुभव हो और कुछ मत गाना।" श्रीनाथजी की प्रसादी पट–भूषण कृष्णदासजी ने उस वेश्या को दिए। वेश्या ने उन्हें धारण किया और पूछा कि आपके सेठजी कहाँ है ? तो कृष्णदासजी ने श्रीनाथजी की ओर इशारा कर दिया कि ये ही हमारे सेठजी हैं और कहा कि गान और नृत्य की जो–जो कला तुम जानती हो, उसकी सफलता इसी में है कि आज तुम हमारे सेठजी को रिझा दो। इसके बाद श्रीकृष्णदासजी महाराज ने श्रीनाथजी के सामने हाथ जोड़कर निवेदन किया – "नाथजी ! अब तक इसने उनको रिझाया, जिनको इस कला का महत्व ही पता नहीं था। नृत्य–गान के सच्चे रिझवार तो आप ही हैं। आपके चरणों में मेरी ऐसी प्रार्थना है कि एकबार आप इसको अपनी बाँकी झाँकी का दर्शन करा दें। अब तक ये बहुत नाची संसार में संसारियो के लिए, लेकिन अब ऐसी कृपा आप इस पर कर दें कि अब इसको दुबारा संसार में नाचना न पड़े।" कृष्णदास जी महाराज ने प्रार्थना की। वह वेश्या जैसे ही सुंदर एक नर्तकी के वेष में श्रीनाथजी के सम्मुख आई और नाथजी की ओर देखा तो श्रीठाकुरजी ने ऐसी कृपा उस वेश्या के ऊपर की, ऐसा अपना कोटि–कोटि मन्मथ–मन्मथकारी स्वरूप दिखाया। उस वेश्या को मन में इतना कष्ट (पश्चाताप) हुआ कि मैंने आज तक संसारियों को रिझाया, आज तक मैं नास्तिकों के लिए नाची, जिनके लिए नाचने से मेरा 'माया में नाचना' और अधिक बढ़ गया, अगर इनके लिए नाचती तो सदा–सदा के लिए नाचना ही बंद हो जाता। वहाँ उस वेश्या ने पद गाया – **"मो मन गिरिधर छवि पै अटक्यो।"** ऐसा मन उसका श्रीनाथजी के स्वरूप में अटका। तीन पक्तियों का सम्पूर्ण पद है और वहाँ नाथजी की कृपा हुई है, ऐसा नृत्य किया कि दो पंक्तियाँ ही गा पाई थीं, उसके बाद तो नाचते–नाचते उसने नाथजी के सामने शरीर छोड़ दिया। तब कृष्णदासजी महाराज ने उस पद को पूर्ण किया। अंतिम पंक्ति श्रीकृष्णदासजी महाराज ने गाई – **"कृष्णदास कियौ प्राण न्यौछावर, यह तन जग सिर पटक्यौ॥"** जब तक भगवान् में मन नहीं अटकेगा, तब तक संसार का भटकन समाप्त नहीं होगा और जब ठाकुरजी में अटक गया तो फिर भटकना कैसा? सूरदासजी का एक बहुत सुन्दर पद है – **"अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल। काम क्रोध को पहिरि चोलना, कण्ठ विषय की माल॥"** जैसे नाचने वाले का एक वेष होता है। सूरदासजी कह रहे हैं – प्रभु ! मैं भी बहुत नाचा, जन्म–जन्मांतरों से नाचता ही आ रहा हूँ। काम, क्रोध का चोला पहना हुआ है। विषयों की माला गले में पहनी हुई है। **"महामोह के नूपुर बाजत निंदा सब्द रसाल।"** नाचने वाला नूपुर पहनता है, मैंने भी मोह के नूपुर पहन रखे हैं और इसमें से निंदा की ध्वनि निकल रही है। **"सूरदास की सबै अविद्या, दूर करौ नन्दलाल॥"** हमलोग नाचते ही तो आ रहे है सदा से, पशु–पक्षी बन के नाचे, अब मनुष्य बनकर भी नाच रहे हैं और आगे भी नाचने की तैयारी में लगे हुए है, ये दुर्भाग्य है हमलोगों का।

"नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं।" (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -४४)

मनुष्य शरीर पाकर विषय–विलासों के लिए हमलोग नाच रहे हैं। श्रीसूरदासजी का एक पद है – **"बिषया जात हरष्यौ गात। बरज रहे सब, कह्यौ न मानत, करि करि जतन उड़ात॥"** संत–महापुरुषों ने कहा है – **"विषय रस पान पीक सम त्याग।"** अगर विषयों में नाचना बंद करना चाहते हो, तो पान की पीक की तरह विषयों के रस को छोड़ दो, जैसे पान खाने वाला जब पीक को थूक देता है तो थूकी हुई वस्तु को याद नहीं करता है, वैसे ही विषयों का त्याग जीवन में हो जाए कि छूटने के बाद जीवन में इनका पुनः स्मरण कभी न हो। श्रीकृष्णदासजी की कृपा से उस वेश्या का मन तो 'गिरिधर गोपालजी' में अटक गया, लेकिन हमारा–तुम्हारा मन तो अभी नहीं अटका है। कपिल भगवान् ने भागवतजी में बहुत सुन्दर बात कही है – "अगर मुझमें मन अटकने में समस्या प्रतीत होती है तो मेरे जनों में मन को अटका दो, मेरे भक्तों में आसक्ति कर लो। कैसी आसक्ति करें ? कैसा प्रेम करें ? **"स एव साधुषु तो ..... ॥"** (भागवत ३/२५/२०) जैसा प्रेम हमलोग संसारी सम्बन्धियों से निभाते हैं – एक माँ अपने बेटे से प्रेम करती है, एक स्त्री अपने पति से प्रेम करती है, वैसा ही भगवान् के भक्तों में प्रेम हो जाए तो सहज स्वाभाविकी भक्ति प्राप्त हो जाएगी।

कृष्णाराधिकाओं की समर्था रति

श्रीबाबामहाराज के प्रवचन "गोपी-गीत" (२६,२७/७/१९९७)से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी नंदनीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

ब्रजगोपीजन वन-कुञ्जों में कृष्ण-विरह में गीत गा रही हैं। ब्रजगोपियों ने प्रेमाधिक्य के कारण श्यामसुन्दर को कितव (कपटी) कहा है -

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥

(भागवत १०/३१/१६)

कपटी के साथ-साथ ये भी कहा कि तुम अकृतज्ञ हो, अकृतज्ञ का तात्पर्य होता है - 'किये हुए उपकार को न मानना (तन)।' गोपीजन श्रीकृष्ण से कह रही हैं कि तुम कृतघ्न हो, उपकार नहीं मानते हो, तुम्हारे साथ जितना भी भला किया जाए, उसको समझते नहीं हो, भले के साथ बुरा करते हो। ऐसी वक्रोक्ति वे कह रही हैं, ऐसा तो केवल प्रेमराज्य में ही होता है। अन्य लोगों ने भी कृष्ण को कपटी कहा किन्तु उनमें और गोपियों में बहुत बड़ा अंतर है। गोपियों की वाणी आनंदमय है, रसमय है, आह्लादमय है। गोपियों की तरह 'कटु शब्द' दूसरे लोगों ने भी कहे थे, जैसे - शिशुपाल, दुर्योधन, कर्ण आदि ने भी कृष्ण का उपहास किया था, उन्हें कटु वचन कहे थे परन्तु उनकी वाणी में आनंद नहीं था क्योंकि उसका मूल प्रेम नहीं था इसलिए उसका परिणाम विनाश हुआ। महाभारत के युद्ध में जब दुर्योधन की मृत्यु हुई तो अश्वत्थामा विलाप करने लग गया और शोक से अधीर होकर बोला कि आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि पांडवों की सारी सेना को छल से समाप्त कर दूँगा। कृपाचार्यजी ने रोका कि छल से नहीं मारो, तब अश्वत्थामा ने कहा कि अरे ! धिक्कार है उन कृष्ण-अर्जुन को, दोनों महान कपटी हैं। उसने दोनों को सैकड़ों गालियाँ दी और कहा कि जिस समय गदा युद्ध में भीमसेन ने दुर्योधन को कपट से मारा, उस समय कृष्ण क्यों नहीं बोले? युधिष्ठिर की धर्मशीलता को धिक्कार है, सब पांडव कपटी हैं, मैं भी इन कपटियों से कपट करूँगा। अश्वत्थामा ने कृष्ण व पाण्डवजनों को कपटी कहा क्योंकि वह इन सबसे द्वेष करता था, इस कारण उसका घोर पतन हुआ तथा उसे अपार कष्ट सहना पड़ा। धृतराष्ट्र ने भी कहा था संजय से कि मेरे बेटे में दस हजार हाथियों का बल था, वह कैसे मारा गया ? जवाब मिला कि कपट से मारा गया तब धृतराष्ट्र क्रोध से बोले कि धिक्कार है इन कपटियों को। इस प्रकार द्वेषी लोगों ने कृष्ण को कपटी कहा था लेकिन उसका परिणाम अंधकार था।

उधर गोपियाँ भी श्रीकृष्ण को कपटी कहती हैं तो गोपियों के वक्र वचन सुनकर श्रीकृष्ण दौड़े आते हैं। जब महारास काल में श्रीकृष्ण के अंतर्धान होने पर गोपियाँ श्यामसुन्दर को पुकार रही थीं, विरहावेश में गा रही थीं तो उनके हृदय में प्रेम था, कृष्ण-दर्शन की लालसा थी। गोपियों ने कृष्ण को कपटी, धूर्त, अकृतज्ञ कहा, वस्तुतः उनके हृदय में तो विशुद्ध प्रेम था, जिसके फलस्वरूपतः श्यामसुन्दर का दर्शन हुआ, उनके समक्ष श्रीकृष्ण आते हैं और फिर से रास-रंग, आनंद, नृत्य-गान और उल्लास का रसमय वातावरण निर्मित होता है -

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

(भागवत- १०/३२/२)

श्रीकृष्ण प्रकट होकर सामने से आ रहे हैं, कैसे आ रहे हैं ? गोपियों के मुख से इतनी गालियाँ सुनने के बाद भी मुस्कुराते हुए चले आ रहे हैं, यह प्रेम की शक्ति है। अपने हाथों में पीताम्बर पकड़े हैं, यह उनकी अदा है, जैसे कोई नयी बहू आती है तो कभी-कभी हाथों से अपना आंचल पकड़ लेती है और इठलाते हुए चलती है, ये क्या है? यह एक प्रेम की कला है। अब कृष्ण भी तो रसिकशेखर हैं, उनका मनमोहक स्वरूप करोड़ों कामदेवों को भी लजाने वाला है अर्थात् वे साक्षात् मन्मथ-मन्मथ है, ऐसे मधुरातिमधुर अद्भुत सौन्दर्य स्वरूप वाले मदनमोहन गोपियों से कहते हैं कि हम तुम जैसी नव वधूटियों से कम थोड़े ही हैं। तब गोपियाँ श्रीकृष्ण से व्यंग्य में कहती हैं -

जो तुम होते लला कहुँ नन्द लली तो गरे कट जाते करोरन के।
सुकुमारता देख तुम्हारी लजैं छल छंद सिखे चित चोरन के॥
जमुना तट गोपिन रोकत हौ करि कौतुक भौंह मरोड़न के।
अति सुन्दर अति चंचल नैनन हेरि हँसौ बहु भाव करौ रस बोरन के॥
जो तुम होते लला कहुँ.....

गोपियाँ श्यामसुन्दर से कहती हैं कि ऐसे तो कोई नव विवाहिता भी नहीं मुस्कुरायेगी, जैसे तुम मुस्कुरा रहे हो।

अतः गोपीजनों की श्रीकृष्ण में स्वभाविकी रति है, जिससे उनका प्रेमाधिकार सहज स्नेहमय है। गोपिकाएँ कुछ भी कहती हैं तो उसे सुनकर श्यामसुन्दर मुस्कुराते हैं, इस तरह से कृष्ण व गोपिजनों की पारस्परिक प्रीति बढ़ती रहती है।

-क्रमशः

धामाराधना

श्री बाबा महाराज के प्रवचन 'धाम-महिमा' (२,३/५/२००६) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी दिव्यांशीजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

निर्माय चारुमुकुटं नवचन्द्रकेण
गुञ्जाभिरारचितहारमुपाहरन्ती।
वृन्दाटवीनवनिकुञ्जिगृहाधिदेव्याः
श्रीराधिके ! तव कदा भवतास्मि दासी॥

(श्रीराधासुधानिधि - ३०)

इस श्लोक में भावना के चार बिंदु हैं - धाम, धामिनी (श्रीजी), सखी (सेविका) और सेवा। धाम के तीन रूप होते हैं - एक तो नित्यधाम, दूसरा धाम जो अवतार लेता है। (धाम अवतार इसलिये लेता है कि वह चिन्मय है, जैसे - भगवान् चिन्मय हैं, धाम भी चिन्मय है।) तीसरा जहाँ धाम अवतार लेता है, ये धाम का अधिभूत स्वरूप है, जहाँ हम लोग बैठे हैं, ये उसका तीसरा भौतिक (परिदृश्यमाण) रूप है। यही वह सर्वाधिक सर्वसुलभ बिंदु है जहाँ हम लोग उपासना कर सकते हैं और करते हैं। जैसे - भगवान् का नाम सबको सुलभ है, चोर भी भगवन्नाम ले सकता है, पापी भी ले सकता है। दुरात्मा, सदात्मा सभी के लिये हरिनाम सुलभ है, उसी तरह से यह धाम भी सब के लिये सुलभ है। कोई भी पुण्यात्मा, पापात्मा यहाँ आ सकता है। जैसे नाम भगवान् सब पर दया करते हैं, किसी को अपने द्वार से लौटाते नही हैं, वैसे ही धाम महाराज भी हैं। ये किसी दुरात्मा को अपने द्वार से लौटाते नहीं हैं। जैसे नाम-संकीर्तन से पाप नष्ट होता है, वैसे ही धाम भगवान् की सेवा से पाप नष्ट होता है। जिस तरह भगवान् का नाम या भगवान् सबकी कामना पूर्ति करते हैं, उसी तरह से 'धाम भगवान्' भी मनुष्य की कामना पूर्ति करते हैं। अगणित लोग गिरिराज जी की परिक्रमा लगाते हैं और उनकी कामनाएँ पूरी होती हैं। यहाँ तक कि सांसारिक कामनायें तो छोटी चीज है, धाम महाराज भगवान् तक से मिलाते हैं। इसलिये अब आवश्यकता है इस 'अधिभूत धाम' में श्रद्धा-विश्वास और भावना की। जैसे नाम-संकीर्तन करते हैं तो उसमें आस्था, विश्वास और श्रद्धा की आवश्यकता पड़ती है।

नाम निरूपण नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड २३)

जैसे नाम-महिमा का प्राकट्य होता है नाम के यत्नपूर्ण अभ्यास से, वैसे ही धाम की श्रद्धापूर्ण सेवा से धाम का स्वरूप, धाम की महिमा और धाम का चमत्कार प्रकट होता है। जैसे बिना सत्संग के भगवान् और उनके नाम की महिमा का ज्ञान नहीं होता है, वैसे ही बिना महापुरुषों के सत्संग के धाम, धाम की महिमा का ज्ञान व धाम के प्रति भावोत्पत्ति नहीं होती है।

श्रीभगवान् ने गीताजी में कहा है -

वीतरागभय क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

(गीता ४/१०)

जब राग, भय, क्रोध आदि विकार चले जाते हैं, तृष्णायें (मान-सम्मान प्रतिष्ठा आदि की कामना) चली जाती हैं तब मनुष्य कृष्णमय बनता है, जिससे भाव व आश्रय की सिद्धि होती है। बाहरी वेष-परिवर्तन से भावोत्पत्ति नहीं होती। जब चित्त से राग (त्रिविध एषणायें) चला जाता है, तब भगवान् से मिलने की उत्कण्ठा की उत्पन्न होती है।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी, एक लालसा उर अति बाढ़ी।
राम चरन बारिज जब देखौं, तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ११०)

तीनों प्रकार की एषणायें - 'वित्तैषणा, लोकैषणा, दारैषणा' जब छूट जायेंगी, तब कृष्णभाव आएगा। श्रीगीताजी के अनुसार जब राग, भय और क्रोध चले जाते हैं तब मन कृष्णमय बनता है, अनन्याश्रय की सिद्धि होती है तथा जीव यथार्थ रूप से भगवद्-शरणागत होता है अन्यथा उसके पहले तो मन लड्डूमय, पूड़ीमय, कचौड़ीमय व रुपयामय बना रहता है, यही सब चक्कर चलता रहता है। अभी तो हम लड्डू-बर्फी, रुपया-पैसा और विषय-भोगों के शरणागत हैं। अब कोई कहे कि इन विषयों से मुक्त होना तो बड़ा कठिन है तो स्वयं श्रीभगवान् बोले - नहीं, **'बहवोज्ञानतपसः पूता मद्भावमागताः'** ज्ञान रूपी तप से पवित्र होकर अनंत जीव मुझे प्राप्त हो गए , मेरे भाव को प्राप्त कर गए।

गोस्वामी तुलसीदासजी में परमोत्कृष्ट श्रेणी की भावना थी, इसीलिए श्रीनाभाजी ने अपने सेवकों से कहा कि वह तुलसीदासजी थे, तुम लोग पहचान नहीं पाए, वह भिखमंगों के बीच में आये और प्रसाद की कणिका लेकर ही चले गये। यह पराश्रद्धा व अति सुदृढ़ विश्वास के साथ धाम-धामी व धामसेवीजनों के प्रति परिपूर्ण

परिपक्व भावना की ही तो बात है। एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में एक व्यक्ति को गौ-हत्या लग गई थी, वह अपना मुँह ढककर गोसाईं जी की कुटिया के सामने से चिल्लाता हुआ निकला तो उन्होंने पूछा कि यह कौन है? किसी ने बताया कि इसको गौ-हत्या लग गयी है, अतः यह मुँह ढककर भिक्षा माँगता है, किसी को अपना मुख नहीं दिखा सकता। उस जमाने में बड़ी कट्टरता थी। कोई खाने को रोटी का टुकड़ा दे देता तो खा लेता था नहीं तो अधिकतर लोग उसको मारते थे, उसका अपमान करते थे। तुलसीदास जी ने उसकी ऐसी दुर्दशा देखी तो लोगों से कहा कि उसको मेरे पास बुला लाओ। गोस्वामी जी की आज्ञानुसार उस व्यक्ति को उनके पास बुलाया गया। गोस्वामी जी ने उससे पूछा - "क्या बात है ?" उसने कहा - "मुझसे गौ-हत्या हो गयी है।" गोस्वामी जी ने पूछा कि अब तुम क्या करोगे तो उसने कहा कि मैं बारह वर्ष तक इसके प्रायश्चित के लिए इसी प्रकार देश भर में घूमता रहूँगा। पंडितों ने मुझे यही प्रायश्चित बताया है। गोस्वामी जी ने उससे कहा - "बैठ जाओ और बोलो - राम।" वह बैठ गया और बोला - राम। गोस्वामी जी ने कहा - "अब जाओ, आज से तुम्हारा गौ-हत्या का पाप समाप्त हो गया।" वह व्यक्ति आश्चर्य से बोला - "महाराज! आप गौ-हत्या समाप्ति की बात कह रहे हैं लेकिन मुझे तो कोई अपने द्वार पर बैठने भी नहीं देगा।" गोस्वामी जी ने कहा - "बैठो और मेरे साथ प्रसाद पाओ।" इस प्रकार उस गौ-हत्यारे को गोस्वामी जी ने अपने साथ बैठाकर प्रसाद भी पवा दिया। अब तो सम्पूर्ण काशी में तुलसीदास जी की बहुत निंदा हुई। पंडित लोग उनके पास आये और बोले - "इस तरह से तुम धर्म का नाश कर दोगे, प्रायश्चित का विधान ही मिटा दोगे, ऐसे ही गोस्वामी बने हो तुम।" गोस्वामी जी ने कहा - "नहीं, मैं तो शास्त्र के अनुसार चल रहा हूँ, देखो शास्त्रों में क्या लिखा है, श्रीमद्भागवत का यह श्लोक सुनो -

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात्॥

(भागवत ६/१३/८)

ब्रह्म-हत्यारा, गौ-हत्यारा, पिता का हत्यारा, माता का हत्यारा, इतने बड़े महापापी भी भगवान् के नाम-कीर्तन से शुद्ध हो जाते हैं।" यह सुनकर पंडित बोले - "ऐसे हम कैसे मान लेंगे कि इसका गौ-हत्या का पाप समाप्त हो गया है, यदि विश्वनाथ जी निर्णय कर दें कि यह शुद्ध हो गया है तब हम मानेंगे।" गोस्वामी जी ने कहा - "ठीक है, शिव जी ही भगवन्नाम की यथार्थ महिमा को जानते हैं।" ब्राह्मण बोले - "इस हत्यारे को विश्वनाथ जी के मंदिर में ले चलो और बाहर इसके द्वारा उनके नादिया को ही भोग लगवा दो, यदि नादिया इसके हाथ से दिए प्रसाद को खा लेगा तो हमलोग मान लेंगे कि यह शुद्ध हो गया है।" गोसाईं जी उस हत्यारे को लेकर नादिया के पास गए और बोले कि 'राम' नाम कहकर भोग लगा, तो उसने गोसाईं जी की आज्ञा से 'राम-राम' कहकर भोग लगाया और बोला - "हे विश्वनाथ! अगर मैं 'राम' नाम के प्रभाव से शुद्ध हो गया हूँ तो आप भोग लगाओ।" इतना कहते ही वह पत्थर का नादिया साक्षात् रूप से गौ-हत्यारे द्वारा अर्पित सम्पूर्ण प्रसाद को खा गया। यह आस्था अलग ही होती है और यही आस्था इस अधिभूत धाम के प्रति उत्पन्न करने के लिए निरंतर सत्संग करना चाहिए, नहीं तो हमजैसे लोगों का सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ ही बीत जाता है और आस्था उत्पन्न नहीं होती है। आस्था के स्थान पर अनास्था हो जाती है। धाम में ही रहने वाले कई लोग धाम-सेवा को प्रपंच बताते हैं, अब उनको धाम में रहने से क्या उपलब्धि होगी? हम जैसे लोग धाम में रहकर संकीर्तन करते हैं लेकिन कुछ नहीं होता है लेकिन जो धामनिष्ठ भावुक महापुरुष होते हैं, उनका सम्पूर्ण जीवन ही भक्तिमय व मंगलकारी होता है ऐसे संत-महापुरुषों की धामाराधना से सम्पूर्ण विश्व का कल्याण होता है।

जिस ब्रज में आचार्यों ने यहाँ की रज की उपासना की। आदि शंकराचार्यजी के जीवन की घटना है - एकबार वह दिग्विजय करते हुए बद्रीनारायण से ब्रज की ओर आ रहे थे। वह जिस स्थान पर बैठते थे, पहले वहाँ गड्ढा खोदकर उसे गोबर से लीपा जाता था। जब वह ब्रज के निकट आये तो उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि अब गड्ढा मत खोदो केवल जल का छींटा दे दिया करो। यह सुनकर उनके शिष्यों ने विचार किया कि गुरूजी का मस्तिष्क खराब हो गया है। अंत में जब ब्रजभूमि आयी तो वह यहाँ की रज में लोटने लग गए। शिष्यों ने कहा कि इनका कैसा दिमाग हो गया है। शंकराचार्य जी बोले - "अरे मूर्खो ! ये तो ब्रज है, यहाँ की रज-प्राप्ति के लिए स्वयं श्रीश्यामसुन्दर भी लालायित रहते हैं।" अतः ऐसा कोई भी आचार्य नहीं हुआ जिसकी ब्रजधाम के प्रति दिव्य आस्था न हो। धाम के तीनों स्वरूपों में जो अधिभूत (दिखाई देने वाला) धाम है, वही हमें अधिदैवधाम व नित्यधाम से मिलाएगा। इसी अधिभूत (परिदृश्यमाण) धाम के ही अनेक सेवा-विधान और अनेक प्रकार की उपासना-पद्धतियाँ हैं।

-क्रमशः

नृत्य-गान ही रसोपासना

श्री बाबा महाराज के सत्संग "नाम महिमा" (१९-५-२०१०) से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी मधुप्रियाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

'नाम-संकीर्तन व नृत्य करके अपने प्रियतम-प्रेमास्पद श्रीभगवान् को रिझाना' रसमयी आराधना है। 'भगवन्नाम' ही सर्वदेवमय, वेदों का प्राण व सर्वगुणसम्पन्न है।

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड १९)

वेदप्राण क्या है ? 'ॐ कार' इसमें और रामनाम, कृष्णनाम में कोई अंतर नहीं है। ये बात भगवान् ने स्वयं कही है -

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/१७)

मैं ही 'ॐ' हूँ, इसलिए 'ॐ' और 'कृष्ण' में कोई भेद नहीं समझना चाहिए। **"सततं कीर्तयन्तो माम्"** अर्थात् कृष्ण-कीर्तन कर रहा है, चाहे 'ॐ' का कीर्तन कर रहा है। अन्य कई जगह भी कहा गया है - **"गिरामस्म्येकमक्षरम्"** (गीता १०/२५), **"प्रणवः सर्ववेदेषु"** (गीता ७ध८) इसीलिए उपरोक्त चौपाई में गोस्वामीजी कहते हैं बेद-प्रान 'वेद का प्राण' अर्थात् ॐकार, रामनाम ही ॐकार है, कृष्णनाम ही ॐकार है। प्रश्न है कि जब यह 'ॐकार' है तो अलग से राम-कृष्ण नाम क्यों रखा गया? इसका उत्तर है -

"सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥"

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - २०)

इस कारण से 'ॐ' को छोड़ दिया गया क्योंकि सब इसके अधिकारी नहीं हैं। हमारे सनातन धर्म में एक पद्धति है कि वेद वही ग्रहण कर सकता है जो उसका अधिकारी हो, सबको वेद का अधिकारी नहीं माना गया है लेकिन भगवन्नाम में सबका अधिकार है। **"सुखद सब काहू"** जैसे वेद में 'ॐ' का अधिकार शूद्र, अन्त्यज, चांडाल, स्त्री आदि को नहीं है लेकिन भगवन्नाम में सभी का अधिकार है। 'ॐ' केवल परलोक बना सकता है, लोक नहीं जबकि भगवन्नाम के लिए कहा गया - **"लोक लाहु परलोक निबाहू"** भगवन्नाम से लोक-परलोक दोनों बनते हैं। विनयपत्रिका में गोस्वामीजी ने कहा है -

"रोटी लूगा नीके राखे, आगे हू को वेद भाखे" भगवन्नाम से स्वतः बिना चाहे रोटी, कपड़ा आदि सब मिलता है। इसीलिए ये वेद प्राण होते हुए भी सबके लिए है - **"अगुन अनूपम गुन निधान सो।"**

श्रीगीताजी में उपदेशारम्भ के प्रथम श्लोक में ही श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा -

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २/११)

तू शोक करता है और बुद्धिमान बनता है, ये फलासक्ति है। विद्वान् तो वह है जिसको कभी भी हर्ष-शोक नहीं होता, कर्मफलों में आसक्ति नहीं होती यदि थोड़ी-सी भी फलासक्ति है तो वह पंडित नहीं मूर्ख है, वह कभी बंधन से नहीं छूट पाएगा। ये सब सिद्धांत जानना बहुत जरूरी हैं। 'गीताजी १७/२५' में श्रीठाकुरजी सच्ची नाम निष्ठा बता रहे हैं कि मोक्षाकांक्षी को फल की इच्छा छोड़कर भगवन्नाम लेना चाहिए अन्यथा वह नाम नामाभास बन जाएगा। श्रीमद्भगवद्गीता में 'श्लोक १७/२३ से १७/२७ तक' नाम-महिमा का निरूपण हुआ है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(गीता १७/२३)

"ॐ तत्सदिति निर्देशो" निर्देश अर्थात् नाम ब्रह्म का निर्देश भगवान् ने तीन प्रकार का बताया है - ॐ, तत्, सत्।

तीसरा भगवन्नाम 'सत्' है -

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७/२६)

सभी प्रशस्त कर्मो में 'सत्' ब्रह्म का नाम लिया जाता है। 'सत्' का बहुत व्यापक अर्थ भगवान् ने किया है

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७/२७)

यज्ञ, तप, दान में जो श्रद्धा और भक्ति है वह भी सद्ब्रह्म है यहाँ तक कि उनके लिए जो भी भक्तियुक्त कर्म करोगे, वह कर्म भी सद्-ब्रह्म (भगवान्) बन जाता है। बिना भगवन्नाम के कोई भी कर्म सफल नहीं हो सकता है, चाहे यज्ञ हो, तप हो, दान हो। मान लो कोई शंका करे कि इसमें राम, कृष्ण आदि नाम नहीं है तो इसका समाधान है कि वेद में जो परम्परायें हैं - ॐ(प्रणव), निराकार (आकार रहित) आदि, इसके अतिरिक्त जो सगुण प्रतिपादक श्रुतियाँ

हैं, वे सगुण साकार ब्रह्म के नाम का प्रतिपादन करती हैं, वह भी वेद है, जैसे रामतापनी उपनिषद् में रामनाम, गोपालतापनी उपनिषद् में गोपालनाम। श्रीगीताजी में भी श्रीभगवान् ने कहा है –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४/९)

हमारे जन्म और कर्म दिव्य हैं। भगवान् का जन्म हुआ तो उनके नाम हुए वसुदेवनंदन, देवकीनंदन, यशोदानंदन, नंदनन्दन। इसी प्रकार उनके चिन्मय कर्म (लीलायें) हैं माखनचोरीलीला, गौचारणलीला, कालियमर्दनलीला, चीरहरणलीला, महारासलीला ये सब अलौकिक, दिव्य लीलायें हैं। 'दिव्य'अर्थात् ये प्राकृत नहीं हैं, इसलिए इनमें प्राकृतभाव नहीं करना चाहिए। यदि तुम गीता मानते हो तो भगवान् के जन्म और कर्म को दिव्य (चिन्मय) मानने से भवसागर पार हो जाओगे। 'तत्त्वतः'तत्त्व स्वरूप से जो भगवान् के जन्म और कर्म को दिव्य मानता है, शरीर को छोड़ने के बाद उसको पुनर्जन्म नहीं मिलता है, वह भगवान् को ही प्राप्त करता है। इसलिए भगवान् के सभी नाम दिव्य हैं। इसके अलावा स्वयं कृष्ण नाम की महिमा भी श्रीगीताजी में है। भगवान् ने कहा कि जो मेरे सगुण साकार नाम की उपेक्षा करता है, उसके जप, तप, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी साधन नष्ट हो जाते हैं।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/११)

भगवान् कहते हैं कि जो महामूढ़ हैं, वे मेरी अवज्ञा करते हैं और सोचते हैं कि ये तो भगवान् नहीं मनुष्य हैं। वे मेरे उस परम भाव को नहीं जानते हैं जो अव्यय (अविनाशी) है। मैं परम भाव से युक्त होकर अवतार लेता हूँ।

अवतार के समय भी भगवान् अव्यय, अविनाशी और अनुत्तम रहते हैं।अनुत्तम माने उनसे ऊँचा कोई नहीं रहता है। श्रीभगवान् ने स्वयं स्पष्ट कहा है –

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ४/६)

('सन्'- होता हुआ।) अजन्मा, अव्ययात्मा (अविनाशी) तथा अनंत प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी मैं अपनी निज योगमाया से अवतार लेता हूँ, उस समय भी मैं अव्ययात्मा ईश्वर रहता हूँ।" ये सब चीजें याद रखने पर हमारा मन भी निस्संदेह उपासना में लगता है, संशय रहित रहता है। यह केवल भाषण की बात नहीं है, अपने को भी पहले तत्त्वज्ञान होना चाहिए। (गीता ९/११) जो लोग ज्ञान मद में मेरी अवज्ञा करते हैं और कहते हैं कि भगवान् साकार नहीं हैं क्योंकि समस्त आकार नष्ट हो जाते हैं और उनको काल खा जाता है, इस तरह से जो मेरी अवमानना कर मुझे मनुष्य समझते हैं, वे मेरे उस परम भाव को नहीं जानते। मैं मनुष्य शरीर में अवतार लेकर भी अव्यय अविनाशी रहता हूँ, अनुत्तम रहता हूँ।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चौव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९/१२)

जो लोग ज्ञान–मद में भगवान् के साकार रूप की अवज्ञा करते हैं, इस अपराध के कारण उनकी सारी आशाएँ व्यर्थ हैं, उनके सभी कर्म व्यर्थ हैं, उनका ज्ञान व्यर्थ है, उन्हें अपराध का दण्ड भोगना ही पड़ता है, चाहे वे कितना भी ऊँचा भाषण दें, कितने भी बड़े विद्वान, विरक्तराज बनते हों। जैसे – मीरा जी को जहर दिया गया लेकिन उन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंगद भक्त को विष दिया गया उन पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भक्तमाल में ऐसे अनेकों भक्तों की कथाएँ हैं। भक्ति वाले की भगवान् अवश्य रक्षा करते हैं, ज्ञानमार्गी की नहीं। 'सुकरात' विश्व का प्रसिद्ध ज्ञानी हुआ लेकिन उसे जहर दिया गया तो उसे मरना पड़ा। सगुण–साकार श्रीभगवान् की अनन्यभाव से उपासना करने वाले भक्त का स्वयं श्रीठाकुरजी योगक्षेम धारण करते हैं

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९/२२)

निर्गुण उपासना में ये सब नहीं है, जो लोग छोटा–मोटा ज्ञान प्राप्त करके सगुण उपासना का तिरस्कार करते हैं, गीताजी ९/१२ के अनुसार उनकी आशाएँ, उनका ज्ञान, उनकी सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं, धीरे–धीरे उनकी प्रकृति बदलकर राक्षसी, आसुरी तथा मोहनी हो जाती है, वे भोगी तथा अहंकारी हो जाते हैं भगवान् के सगुण साकार नाम की अवज्ञा रूपी अपराध के कारण। इसके विपरीत जो दैवी प्रकृति वाले महात्मा होते हैं, वे दिन–रात कृष्ण–कीर्तन करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

(गीता ९/१४)

'माम्'– मुझ कृष्ण का कीर्तन करते हैं। इसमें कृष्णनाम आ गया, 'सततम्' – वे लगातार कृष्ण–संकीर्तन करते हैं, क्योंकि कृष्ण के जन्म–कर्म आदि दिव्य हैं। भगवन्नाम–संकीर्तनाराधन दैवी प्रकृति वाले ही कर सकते हैं, जिनके मन में कोई संशय नहीं है। आराधना अखंड करनी चाहिए। आराधननिष्ठ भक्तजन रसमयी भक्ति से अपने आराध्य को नित्य नमन करते हुए सुदृढ़व्रत के साथ रसाराधन (नृत्य–गान) का सतत् अखंड साधन करते हैं।

–क्रमशः

गौ-भक्ति ही गोविन्दाराधन

श्री बाबा महाराज के प्रवचन "गौ-महिमा" (३/६/२०१२)से संकलित

संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी श्यामाजी, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा

कृष्णोपासना और गौ-सेवा एक ही है। गाय के लिए गोपाल व गोपी-ग्वालों का अवतार होता है। 'श्रीगोविन्दलीलामृत' ग्रन्थ में गोपियों व गोपाल की सुमधुर गौ-प्रेमलीला सुवर्णित है।

ब्रजगोपिकाएँ श्रीश्यामसुन्दर से कहती हैं

प्यारे ! कैसे छुटोगे पाप से, काऊ तीरथ हू नहिं न्हात हो।

"हे प्यारे ! तुम प्रात:काल उठते ही सखाओं सहित चोरी करने निकल पड़ते हो, आज एक गोपी के सदन में गुप्त-प्रवेश किया तो कल दूसरी गोपी के यहाँ मन व माखन की चोरी करते हो और मटकी-भंजन कर दधि सहित चित्त ही लूट लेते हो। मार्ग में छकिहारिनों को छेड़ते हो, कभी किसी के वस्त्राभूषण व चूनरी चुरा लेते हो, क्या ये सब पापकृत्य नहीं हैं ? हमने तुमको किसी तीर्थ में स्नान करते नहीं देखा, कभी भजन करते नहीं देखा।"

ब्रजगोपियों की बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले - "मैं तो इतना भजन करता हूँ कि मेरे जैसा भजन तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं कर सकते। **प्यारी ! गऊ रज गंगा न्हात हौं.... ॥**

प्रात:काल उठकर सर्वप्रथम मैं गौ-रज गंगा में स्नान करता हूँ और '**जपत गऊअन को नाम ॥**' गायों के नाम का जप करता हूँ। (गौचारणकाल में जब गायें वन में घास चरने के लिए बहुत दूर-दूर तक चली जाती हैं तो श्रीकृष्ण उन्हें अपने पास बुलाने के लिए उनका नाम लेकर पुकारते हैं - अरी धौरी ! ओ कारी !! अरे धूमर !!!.....) जिस प्रकार संतजन अपने इष्टदेव का नाम-जप करते हैं, उसी प्रकार मैं गौओं के नाम का प्रतिदिन जप करता हूँ, यह बहुत बड़ा भजन है। '**परम पुनीत सदा रहौं ...**' पाप तो मेरा कभी स्पर्श भी नहीं कर सकता। मैं तो सदा-सर्वदा पवित्र बना रहता हूँ। जो गौभक्त है, उसके पास पाप कभी आ ही नहीं सकता, वह परमपावन व मंगलमय है। गौ-सेवक हर समय गायों का दर्शन करता रहता है, गौमाता इतनी पवित्र हैं कि सभी पापों को समूलत: नष्ट कर देती हैं।" गोपालजी के गौभक्तिमय वचन सुनकर ब्रजगोपिकाएँ निरुत्तर हो गई क्योंकि इनकी भी विलक्षण गौप्रेमनिष्ठा थी।

गोविन्दलीलामृत में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि गौ-पालन, गौ-रक्षा एक ऐसा धर्म है जिससे आयु और यश की वृद्धि होती है, मनुष्य की अकाल मृत्यु भी टल जाती है। एकबार जब यशोदा मैया ने बालकृष्णलाल से बहुत आग्रह किया कि लाला ! तू छतरी लगाकर और पादुका पहनकर जायेगा तो मैं गौचारण की आज्ञा दूँगी। तब कृष्ण बोले - "मैया! गौसेवा एक परमपावन धर्मयज्ञ है, यज्ञ के साथ दान और दान के साथ तप करने से कभी भी अमंगल नहीं होता है।" यह सुनकर "**वात्सल्य व्याकुलो वीक्ष्य पितरौ प्राह केशव:**" यशोदा मैया और नन्दबाबा व्याकुल हो गये कि कन्हैया जंगल में अकेले कैसे जाएगा, वहाँ तो प्रतिदिन कंस द्वारा भेजे हुए असुर आते रहते हैं। घबड़ाकर मैया ने कृष्ण से पूछा कि लाला! तुझे वन में गाय चराते हुए भय नहीं लगेगा ? गोपालजी ने कहा - "मैया ! गौ-पालन करना हमारा परम पावन धर्म है, नित्य प्रात: गौ-दर्शन व गौ-सेवा कर गौरज को मस्तक पर धारण किया जाए, यही प्रेममय धर्म है। यह केवल जीविका (उदर-पोषण का साधन) नहीं है।

गोपालनंस्वधर्म्मोनस्तास्तुनिश्छत्र-पादुका:।
यथागावस्तथागोपास्तर्हिधर्म्म:सुनिर्म्मल: ॥
धर्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मोरक्षतिरक्षित:।
सकथंत्यज्यतेमातर्भीषुधर्म्मोऽस्तिरक्षिता ॥

(गोविन्दलीलामृत, पंचमसर्ग २८,२९)

हे मैया! गौ-चारण के समय हम छतरी नहीं लगायेंगे, पैरों में पादुका नहीं पहनेंगे।

"यथागावस्तथागोपास्तर्हिधर्म्म:सुनिर्म्मल: ॥"

निर्मल धर्म यही है कि जैसे गाय हमारी इष्ट है तो जिस प्रकार गाय रहती है, उसी प्रकार गोपालक ग्वारिया (गोपाल) को भी रहना चाहिए, जब गाय के पास छतरी नहीं है तो ग्वारिया के पास भी न हो, ये है सच्चा गौपालन-धर्म। सुनिर्मल धर्म वही है, जिसमें कष्ट सहा जाए।" बहुत से लोग जीविकोपार्जन हेतु धन लेकर सेवा करते हैं, यदि वे धर्मबुद्धि से सेवा करें तो उनको निश्चित रूप से भगवान् का प्रेम मिल जाएगा लेकिन सांसारिक लोग लोभ को नहीं छोड़ पाते हैं।

यशोदा मैया बोलीं - "बेटा ! तू हमें धर्म की शिक्षा दे रहा है, धर्म से क्या होगा?" गोपालजी बोले - "मैया! **धर्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मोरक्षतिरक्षित:।** धर्म की रक्षा करने से हमारी आयु की वृद्धि होगी, कंस और उसका कोई भी असुर हमें मार नहीं सकता क्योंकि हम गोपालक हैं। देखो तो सही, कंस का कोई भी असुर मुझे और किसी भी ग्वारिया को हानि नहीं पहुँचा सका। मुझे तो क्या, गौचारण के समय किसी अन्य छोटे से गोपशिशु को भी कंस के भेजे हुए भयंकर दैत्य अघासुर, बकासुर आदि कोई

हानि नहीं पहुँचा सके। धर्म से मनुष्य की आयु का वर्द्धन होता है, कंस क्या मारेगा - '**कंस करूँ निरबंस मेट दऊँ नाम निसानी रे।** हे माँ ! जिस धर्म से आयु व यश वर्द्धित होते हैं, ऐसे धर्म का त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ? कायर लोग धर्म का पालन नहीं कर सकते क्योंकि वे सोचते हैं कि धन का नाश न हो जाए अथवा तू सोचती है कि कंस का कोई असुर न मार जाए। यदि तू मुझको भीरु बनाएगी तो धर्म-पालन मैं नहीं कर पाऊँगा। माँ ! तू भूल रही है, भय के स्थानों में यही धर्म हमारी रक्षा करेगा। जो 'धर्म' समझकर गौ-पालन करता है तो यही धर्म उसकी रक्षा करता है।" ब्रजवासियों की गौभक्ति के कारण ही कंस के द्वारा भेजे हुए असुर अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए। तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। यदि तुम धर्म की रक्षा करते हो तो 'मृत्युकाल, व्याधि व विपत्तियों में 'धर्म' ही तुम्हारी रक्षा करेगा, माता-पिता व सांसारिक-सम्बन्धी लोग रक्षा नहीं कर सकते।

श्रीबाबामहाराज अपने बचपन की एक घटना बताते हैं कि जिस समय मैं प्रयाग में अध्ययनरत था, उन दिनों भारत में अंग्रेजो का शासन था। एक व्यक्ति को किसी अपराध के कारण फाँसी की सजा सुनाई गई थी। जिस व्यक्ति को फाँसी की सजा दी जाती है, उसके गले में रस्सी का फंदा डालकर उसे एक गड्ढे में लटका दिया जाता है, सारा बोझ गले में आ जाता है तो थोड़ी ही देर में उसकी मृत्यु हो जाती है। जिस व्यक्ति के लिए फाँसी की सजा बोली गई थी, जब उसके गले में फंदा लगाकर उसे गड्ढे में नीचे फेंका गया और फिर ऊपर निकाला गया तो सबने देखा कि वह जीवित था, हँस रहा था। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय जेलर को बुलाया गया। जेलर अंग्रेज था, उसने पूछा - "क्या बात है ?" जल्लादों ने कहा कि यह आदमी फाँसी के फंदे पर लटकाए जाने के बाद भी मरता नहीं है। जेलर बोला - "मेरे सामने फंदा लगाओ, तुम लोग फंदा ठीक से नहीं लगाते हो, मरेगा कैसे नहीं, इसे मरना पड़ेगा, यह जज का आर्डर है।" जल्लाद बोले - "हुजूर ! आप ही इसके गले में फंदा लगाकर देखिये।" जेलर ने अबकी बार बहुत मजबूत फंदा उस कैदी के गले में लगाया और जल्लादों को आदेश दिया - "अब इसे गड्ढे में छोड़ो।" जेलर के आदेश से कैदी को अतिशय प्रबलतापूर्वक कुएँ में पटका गया। थोड़ी देर लटकाने के बाद फिर उसके शरीर को ऊपर उठाया गया तो सबने देखा कि वह आदमी फिर से हँस रहा था। जल्लाद बोला - "हुजूर ! देख लीजिये, यह जीवित है।" जेलर बोला - "अरे ! यह मरा नहीं, अब एकबार और प्रयास किया जाएगा।" तीसरी बार जेलर ने उस कैदी के गले में और अधिक मजबूत फंदा बाँधा और कहा - "इस बार तू अवश्य मरेगा।" कैदी बोला - "मैं नहीं मरूँगा।" तीसरी बार फंदा डालकर जब नीचे छोड़ा गया तो इस बार पाँच-सात मिनट तक उसे नीचे लटकाए रखा गया और जब निकाला गया तो पुनः वह पूर्व की भाँति हँस रहा था और बोला - "मैंने पहले ही कहा था कि मैं मरूँगा नहीं।" जेलर ने पूछा - "आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ, इस जेल में बहुत से लोगों को फाँसी दी गयी, सबकी मृत्यु हो गई लेकिन तू कैसे नहीं मरा ?" कैदी ने कहा कि जब तुम लोग फाँसी का फंदा डालकर मुझे गहरे कुएँ में फेकते हो तो मेरे नीचे एक गाय आकर खड़ी हो जाती है और मुझे उठा देती है, इसलिए मेरे गले में कोई दबाव नहीं पड़ता। उस गाय की मैंने एक कसाई से रक्षा की थी, एकबार एक कसाई गाय को वध करने के लिए ले जा रहा था तो मैंने उसे कसाई के हाथों से मुक्त किया था, अब वही 'गाय' मृत्यु से मेरी रक्षा कर रही है।

गौ-पालन एक ऐसा धर्म है, जिससे आयु की वृद्धि होती है, मनुष्य की अकालमृत्यु तक टल जाती है। पूज्य श्रीबाबामहाराज स्वयं अपनी घटना बताते हैं (पूज्यबाबाश्री के शब्दों में) - "सन् २०१० में ब्रज ८४ कोस की यात्रा में (यात्रा के मध्य में) हमारी अचानक तबियत खराब हो गयी, हृदय का एक वाल्व फट गया था, जिससे सम्पूर्ण देह में रक्त फैल गया। डाक्टरों ने कहा कि अब इनका बचना मुश्किल है, लेकिन हमको कुछ नहीं हुआ, इसका कारण है कि यहाँ इतनी गायों का सेवाभाव से पालन-पोषण हो रहा है।" अतः ये बात बिल्कुल सत्य है कि गौ-सेवा से आयु व यश का वर्द्धन होता है। श्रीमानमन्दिर द्वारा संचालित 'माताजी गौशाला' में भक्ति-भाव है, यहाँ के निष्किंचन आराधकजन निःस्वार्थ सेवा व संकीर्तन करते हैं। यह विश्व की अद्वितीय गौशाला है। इस कलिकाल में आज भी भक्ति-शक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार श्रीमानमन्दिर में दृष्टिगोचर हो रहा है, यहाँ से विपुल ब्रज-सेवाकार्य पूर्णतः निष्कामभाव से सहज में हो रहे हैं, उन्हीं सेवाओं का एक साक्षात् प्रमाण है - श्रीमानमन्दिर की माताजी गौशाला, जो सर्वथा अकिंचन भक्तिभाव से चल रही है, कुछ ही वर्षों में देशी गायों की विश्व में सबसे बड़ी गौशाला बनने की ओर अग्रसर है। श्रीजी की कृपाशक्ति ही इसे प्रगतिशील बना रही है। वर्तमानकाल में चालीस हजार से अधिक गौवंश की मातृवत् सेवा हो रही है। गायों की संख्या में निरन्तर संवृद्धि हो रही है, कुछ ही समय में एक लाख तक गौवंश की संख्या हो जायेगी। यहाँ गायों को खरीदा नहीं जाता है, रक्षार्थ व सेवार्थ गायों को लोग स्वतः ले आते हैं, किसी गाय को लौटाया नहीं गया है, इनमें से अधिकतर वे गायें हैं जो कसाइयों द्वारा कटने से बचाई गई हैं, अतः गायों का आशीर्वाद भी गौशाला को प्राप्त हो रहा है। इन गौओं के आशीर्वाद से ही यह गौशाला सतत् संवृद्धि को प्राप्त हो रही है।

-क्रमशः

मोहविभंजनी श्रीगीताजी

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'श्रीमद्भगवद्गीता' (१०/१/२०१२) से संग्रहीत

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।" गोपालजी ने उपनिषद् स्वरूप गायों से दूध निकाला, जो ग्वारिया हैं (ग्वारिया ही दूध को दुहते हैं।) **"पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥"** फिर उस दूध का दिव्यामृत 'श्रीगीताजी' बनीं। अर्जुन बछड़ा बने और भगवान् कृष्ण ने अर्जुन सहित समस्त जगत को विशुद्ध प्रेमप्रद गीतामृत का पान कराया। गीता को 'मोह विभंजनी' कहा गया है, जो मोह का नाश कर देती है। कोई भी हो, गृहस्थ हो, विरक्त हो, जिसको किसी भी प्रकार का मोह है, उस मोहरूपी अज्ञान को समूलतः श्रीगीताजी की अमोघ वाणी नाश कर देती है। मोहविभंजनी श्रीगीताजी श्रीकृष्ण–कृपा से ही संप्राप्त होती हैं, इनके १८ अध्यायों की १८ माहात्म्य–कथायें हैं, कथायें बड़ी ही रोचक, सत्य व चमत्कारिक हैं, माहात्म्य–कथाओं के श्रवण से ही श्रद्धा–विश्वास सुदृढ़ होता है। गीताजी से केवल अर्जुन के मोह का ही नाश नहीं हुआ, संसार में जिसने भी पढ़ा, उसके मोहान्धकार का नाश हो गया।

प्रथम अध्याय का माहात्म्य

अंतःकरण की शुद्धि –

श्रीपद्मपुराण में गीताजी के प्रत्येक अध्याय से सम्बंधित माहात्म्य–कथा का वर्णन किया गया है। इन कथाओं को महादेवजी ने पार्वतीजी को सुनाया है। श्रीमहादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि एकबार लक्ष्मीजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि आप सदा क्षीर सागर में शेष–शैया पर शयन करते हैं, इसका क्या कारण है तो भगवान् बोले कि मैं शयन नहीं करता हूँ, मेरे भीतर एक तेज है, उसका मैं ध्यान करता हूँ। लक्ष्मी जी ने पूछा कि आप ही तो समस्त योगियों के ध्येय हैं, क्या आपका भी कोई ध्येय है? भगवान् ने उत्तर दिया कि आत्मा का स्वरूप द्वैत–अद्वैत से अलग है, वह एक ही सच्चिदानन्दस्वरूप सभी के द्वारा जानने योग्य है। श्रीमद्भगवद्गीता में मैंने अपनी स्थिति का वर्णन किया है। श्रीगीताजी के ५ अध्याय ५ मुख हैं, १० अध्याय १० भुजायें हैं, १ अध्याय उदर है तथा शेष २ अध्याय चरण हैं, इस प्रकार १८ अध्यायों की वाङ्गमयी प्रतिमूर्ति श्रीगीताजी मेरा ही साक्षात् स्वरूप है। जो भी मुमुक्षुजन गीता के एक या आधे अध्याय का अथवा एक, आधे या चौथाई श्लोक का भी प्रतिदिन अभ्यास करते हैं, वह सुशर्मा की तरह मुक्त हो जाते हैं।

श्रीपद्मपुराण में गीता–माहात्म्य के प्रथम अध्याय में सुशर्मा की कथा आती है

श्रीलक्ष्मीजी ने भगवान् से पूछा – "हे परमदेव ! सुशर्मा कौन था, वह कैसे माया–मुक्त हुआ?" श्रीभगवान् ने कहा – "हे प्रिये ! सुशर्मा का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था लेकिन वह कभी ध्यान, जप आदि नहीं करता था, वह बड़ा दुष्ट, महापापी, लम्पट, विषयी था। वह हल जोतता व पत्ते बेचकर जीवन–निर्वाह करता था। मांस–मदिरा व्यसन करता था। अपना सम्पूर्ण जीवन उसने इसी तरह से नष्ट कर लिया। एक दिन सुशर्मा पत्ता लाने के लिए वाटिका में गया, वहाँ एक काले नाग ने उसे डस लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के बाद वह अनेकों नरकों में गया, नरकों की यातनाओं को भोगने के बाद वहाँ से अनेक योनियों में भटकते हुए एक बोझा ढोने वाला बैल बना। बैल बनने पर किसी लंगड़े आदमी ने उसको खरीद लिया और उस पर ८ वर्ष तक ढुलाई किया। एक दिन वह बैल थक करके गिर पड़ा, मूर्छित हो गया। उस बैल का कल्याण करने के लिए नगर के लोगों ने अपने–अपने पुण्य दिए। उस नगर में एक वेश्या भी रहती थी, उसे अपने पुण्य की स्मृति नहीं थी लेकिन उसने भी अन्य लोगों की देखा– देखी उस बैल के लिए कुछ त्याग किया। यमराज के दूत जब उस मृतक बैल के जीव को यमपुरी में ले गए, तो वहाँ उस वेश्या के पुण्यदान से उस मृतक बैल के जीव को ब्राह्मण–शरीर मिला। उस बैल को ब्राह्मण–योनि प्राप्त होने के बाद भी अपने पूर्व जन्म की स्मृति बनी रही, अतः एकबार वह उसी वेश्या के पास गया और बोला – "तुमने पूर्व जन्म में मुझे कौन–सा पुण्यदान दिया था?" वह वेश्या बोली – "एक पिंजरे में तोता प्रतिदिन कुछ पढ़ता था, उसे श्रवण करके मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया और वही पुण्य मैंने तुमको दिया।" फिर उन लोगों ने तोते से जाकर पूछा – "तुम हमें अपने पूर्व जन्म का वृतान्त बताओ।" तोता बोला – "पूर्व जन्म में मैं विद्वान होकर भी अभिमान में घूमता रहता था, विद्वानों से ईर्ष्या करता था। समय पर मेरी मृत्यु हुई और निन्दित लोकों में भटकता रहा, इसके बाद मृत्युलोक में आया किन्तु सद्गुरुदेव की निंदा के कारण तोते के कुल में मेरा जन्म हुआ। गुरु–निंदा के कारण मुझे यह अधम योनि मिली है, बचपन में मेरे माता–पिता की मृत्यु हो गयी। एकबार ग्रीष्मऋतु में तपे हुए मार्ग पर मैं पड़ा हुआ था, वहाँ से एक श्रेष्ठ मुनि मुझे उठा लाये और अपने आश्रम में लाकर एक पिंजरे में डाल दिया। उस आश्रम के ऋषिबालक प्रतिदिन अत्यंत श्रद्धा के साथ श्रीगीताजी के प्रथम अध्याय का उच्च स्वर से पाठ किया करते थे। वहाँ पर मुझे भी गीता को पढ़ाया गया, ऋषिकुमारों से सुनकर मैं भी गीताजी के प्रथम अध्याय के श्लोकों का पाठ करने लगा। एकबार एक चोर बहेलिया उस आश्रम में घुसा और मुझे चुरा लिया और उसके बाद आप जैसी देवी ने मुझे खरीद लिया। अतः गीता के प्रथम अध्याय के पाठ के प्रभाव से मेरा अंतःकरण शुद्ध हो गया और उसी से इस वेश्या का भी हृदय शुद्ध हुआ व उसी के पुण्य–प्रभाव से सुशर्मा ब्राह्मण भी पापमुक्त हुए हैं। इस प्रकार गीताजी के प्रथम अध्याय की महिमा को सुनकर के वे तीनों अपने–अपने घर पर गीता का अभ्यास करने लगे। इसलिए जो कोई भी श्रीगीताजी के प्रथम अध्याय को कहता–सुनता व पाठ करता है, उसका अतिशीघ्र अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और भव–बन्धन से छूट जाता है।

–क्रमशः

प्रेम-प्राप्ति का उपाय

श्रीबाबामहाराज के प्रात:कालीन सत्संग से संग्रहीत
(संकलनकर्त्री/लेखिका - साध्वी देवश्री, दीदी जी गुरुकुल (मान मंदिर) की छात्रा)

श्रीभगवान् ने कहा -

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

(श्रीगीताजी २/५३)

यदि वेदाध्ययन करने से तुम्हारी बुद्धि मुझसे पृथक हो गयी है तो वह बुद्धि जब पुन: भगवान् में स्थिर होगी तब तुमको योग की प्राप्ति होगी, उसके पहले नहीं होगी। इस प्रकार वेदवाणी भी बुद्धि को नष्ट कर देती है। अगर वेद के पढ़ने से तुम्हारे हृदय में कामना उत्पन्न होती है तो वह (वेद पढ़ना) तुमको भगवान् से अलग कर देगा, अत: उसका त्याग कर दो। कोई भी वाणी यदि कामना उत्पन्न कर रही है तो उसका उसी समय त्याग कर देना चाहिए। श्रीभगवतरसिकदेवजी ने कहा है -

सम्प्रदाय नवधा भगति बेद सुरसरी नीर।
ललिता सखी उपासना ज्यों सिंहिनि कौ क्षीर॥
ज्यों सिंहिन कौ क्षीर रहै कुंदन के बासन।
कै बच्चा के पेट और घट करै बिनासन॥
भगवत नित्य बिहार परे सबही को परदा।
रहे निरन्तर पास रसिक बर सखी संप्रदा॥

श्रृंगार-रस की उपासना सिंहनी का दूध है। सिंहनी का दूध या तो उसके शिशु के उदर में पच सकता है अथवा सोने के पात्र में वह ठहर सकता है, किसी अन्य पात्र में सिंहनी के दूध को डाला जाय तो वह उस पात्र को तोड़ देगा, इतना तीक्ष्ण होता है वह दूध। उसी प्रकार से इस रसमयी भक्ति में एक क्रम है, श्रीभगवतरसिकदेवजी ने श्रृंगाररस की उपासना के सप्त सोपान बताए हैं -

प्रथम सुनै भागवत भक्त मुख भगवत बानी।
द्वितीय आराधै भक्ति ब्यास नव भाँति बखानी॥
तृतीय करै गुरु समझि दक्ष सर्वज्ञ रसीलौ।
चौथे होइ बिरक्त बसै बनराज जसीलौ॥
पाँचौ भूलै देह निज छठें भावना रास की।
सातें पावैं रीति रस श्रीस्वामी हरिदास की॥

प्रथम अवस्था (प्रारंभिक साधनावस्था) में भक्त मुख से भागवत सुने, फिर द्वितीय सीढ़ी में श्रीवेदव्यासजी द्वारा भागवत में वर्णित नवधा भक्ति का पालन करे, तृतीय श्रेणी में दक्ष, सर्वज्ञ और रसिक महापुरुष का गुरु रूप में वरण करे, चतुर्थ सोपान में वैराग्य धारण करे, पंचम सोपान में देहाभिमान का त्याग कर दे, तब जाकर षष्ठम् सोपान में रास की भावना की जा सकती है, तदनन्तर सप्तम सोपान में रसिकाचार्यों द्वारा दिग्दर्शित निकुँजरस की उपासना 'दिव्य प्रेमरस' का प्रवेश द्वार खुलता है। अत: रसोपासना की क्रमश: सीढ़ियाँ हैं। प्रथम सोपान में ही निकुंज रस प्राप्त करने का प्रयास करोगे तो तुम्हारे हृदय में प्राकृत भाव आ जाएगा। सभी रस-ग्रन्थों (महावाणी, हित चतुरासी, केलिमाल आदि) में यही नियम है। लेकिन प्राय: लोग इसे समझते नहीं हैं।

इसी तरह श्रीमहावाणी में भी कहा गया है -

पहले रसिक जनन को सेवैं। दूजी दया हिये धरि लेवें॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि हैं। चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि हैं॥
पंचमि पद पंकज अनुरागें। षष्टी रूप अधिकता पागें॥
सप्तमि प्रेम हिये विराधावें। अष्टमि रूप ध्यान गुन गावें॥
नवमी दृता निश्चौं गहिबें। दसमी रसकी सरिता बहिबें॥

इस प्रकार से भगवद्रस-प्राप्ति की ये दस सीढ़ियाँ हैं। **"विधि-निषेध के जे-जे कर्म, तिनको त्याग रहै निष्कर्म।"** निषेधकर्म-त्याग की सिद्धि होने पर ही विधि-कर्मों को छोड़ें तब ही नैष्कर्म्यभाव परिपक्व होता है। यदि अपनी माँ के पास बैठने पर भी हमारे मन में प्राकृत कामभाव उत्पन्न होता है तो वहाँ से हट जाओ। कामविकार उत्पन्न होने पर अपनी बहन, अपनी बेटी के पास से भी तुरन्त दूर हो जाओ। श्रीमद्भागवत में इसे स्पष्ट बताया गया है -

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(श्रीभागवतजी ९/१९/१७)

माँ, बहिन, कन्या के साथ भी एकांत में एक आसन पर एक साथ नहीं बैठना चाहिए। ये सब बातें अत्यन्त सूक्ष्म हैं। यह स्वयं अपने मन में निरीक्षण करना चाहिए कि कौन-सी वस्तु हमारे भीतर प्राकृत भाव उत्पन्न कर रही है? अपनी माँ, बेटी, बहन के पास बैठने से यदि प्राकृत भाव आता है तो शास्त्र इसका निषेध करता है। हमें स्वयं इसे सोचना चाहिए, यह बात कोई दूसरा व्यक्ति नहीं बतायेगा। जब तक अन्तर्मुखता नहीं आयेगी, तब तक भगवद्रस की अनुभूति नहीं हो सकती। 'अन्तर्मुखता' अर्थात् भीतर रमण करना(मन द्वारा भगवान् का नित्य-निरंतर चिंतन-मिलन।)

-क्रमशः

सत्यनिष्ठ हरिश्चंद्रजी

डॉ. रामजीलाल शास्त्री 'बी. एस. सी., एम. ए. द्वय् (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड.
आचार्य (साहित्य), पी. एच. डी., श्रीराधारस मन्दिर, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा

सत्य भगवान् का स्वरूप है। सत्य बोलना, सत्य को स्वीकार कर लेना, असत् आचरण न करना, सत्य का आचरण करने में आने वाली आपत्तियों से न घबड़ाकर सहर्ष शिरोधार्य कर आनंद की अनुभूति करना – यह सब सत्यमूर्ति प्रभु की सच्ची उपासना है। संसार में ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो दूसरों की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हों। यह जीव धर्म है कि किसी के उत्कर्ष की बात सुई की तरह चुभती है, भले ही वह मनुष्ययोनि में हो या देवयोनि में अथवा आसुरीयोनि में, यह मात्सर्य प्राय: सभी योनियों में रहता है।

प्राचीनकाल की बात है – एकबार देवर्षि नारदजी देवलोक में गये। वहाँ इन्द्र की अध्यक्षता में स्वर्ग में एक सभा हो रही थी। नारदजी को देखकर सभी ने उनका सम्मान किया। देवराज इन्द्र की सभा में नारदजी राजा हरिश्चंद्र की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे कि राजा हरिश्चंद्र जैसा सत्यवादी, धर्मनिष्ठ, दयालु, परोपकारी एवं पराक्रमी राजा सम्पूर्ण भूमण्डल में दूसरा कोई नहीं है, वे जो कुछ कहते हैं वही करते हैं। देवराज इन्द्र 'हरिश्चन्द्रजी' की प्रशंसा सह न सके और सोचने लगे कि आश्चर्य की बात है कि मृत्युलोक के राजा की प्रशंसा यहाँ स्वर्गलोक में की जा रही है। उन्होंने विश्वामित्रजी को बुलाकर कहा – "ऋषिवर ! आप राजा हरिश्चंद्र के गुणों की परीक्षा करें क्योंकि नारदजी कहते हैं कि उनके समान समस्त भू-लोक में कोई दूसरा भूपति नहीं है।" विश्वामित्रजी ने इंद्र से कहा – "देवराज ! आप चिंता न करें, मैं उनके गुणों की अवश्य परीक्षा करूँगा। मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण होना उतना सहज नहीं है।" इस प्रकार इन्द्र को आश्वासन देकर विश्वामित्रजी हरिश्चंद्र की परीक्षा लेने के लिए चल दिए। विश्वामित्रजी ने अपने तपोबल के प्रभाव से ऐसी माया की रचना की – 'अर्धरात्रि का समय था, हरिश्चंद्र सोये हुए थे और स्वप्न देख रहे थे कि उन्होंने अपना सारा राज्य विश्वामित्रजी के लिए दान कर दिया है।' जागने पर यह बात उन्हें याद बनी रही। सुबह होते ही विश्वामित्रजी हरिश्चंद्र के पास पहुँचे और बोले – "राजन ! तुम अपना सारा राज्य हमें दान कर चुके हो।" हरिश्चंद्र को स्वप्न की बात याद थी और उसे स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा – "महाराज ! यह लीजिये।" अर्थात् स्वप्न में दिए राज्य को राजा हरिश्चंद्र ने प्रत्यक्ष दे डाला। विश्वामित्रजी को राज्य सौंपकर राजा हरिश्चंद्र, उनकी पत्नी तारा एवं उनका छोटा-सा बालक रोहित तीनों प्राणी सामान्य वस्त्र पहनकर काशी की ओर चल दिए। चूँकि उनका राज्य सार्वभौम था, सारी पृथ्वी को उन्होंने दान में दे दिया था, दान की हुई वस्तु को 'भद्र पुरुष' अपने उपयोग में नहीं लेते। काशी की ओर वह इसलिए गये क्योंकि विद्वानों का ऐसा मत है कि काशी की स्थिति पृथ्वी से अलग भगवान् शिव के त्रिशूल पर मानी गई है।

हरिश्चंद्र अपनी पत्नी तारा एवं पुत्र रोहित के साथ थोड़ी ही दूर चले थे कि विश्वामित्रजी ने उन्हें बुलाकर कहा – "राजन्! तुमने इतना बड़ा दान किया कि दान में सारे राज्य को ही दे दिया। दान भी एक यज्ञ होता है, यज्ञ के बाद यदि दक्षिणा न दी जाए तो यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है, **"अदक्षिणं हुतं यज्ञम्"** ॥ तुमने अभी दक्षिणा तो दी नहीं है।" हरिश्चंद्र जी बोले – "आपकी मनचाही दक्षिणा अवश्य दी जाएगी, आप आज्ञा करें।" विश्वामित्र जी बोले – "हमें साठ भार स्वर्ण चाहिए। साठ भार स्वर्ण का मतलब लगभग पाँच सौ मन सोना। हरिश्चंद्र बोले – "महाराज ! आपकी दक्षिणा अवश्य दी जाएगी, हमें कुछ समय दे दीजिए।" विश्वामित्र बोले – "हमें शीघ्र चाहिए।" हरिश्चंद्र बोले – "महाराज ! हम तीनों प्राणियों को आप काशी में बेच दीजिये।" विश्वामित्र जी ने कहा कि तुम राजा होकर मजदूरी का काम करोगे ? हरिश्चंद्र ने कहा – "धर्म के लिए हम सब कुछ करने को तैयार हैं।" विश्वामित्र जी तीनों प्राणियों को अपने साथ लेकर काशी की ओर चल देते हैं । रास्ता लम्बा था, कुछ दूर चलकर हरिश्चंद्र के पुत्र रोहित को प्यास लगी। विश्वामित्र जी ने कहा – "बालक, चिंता मत करो, हमारे कमण्डल में जल है,

पी लो।" बड़े बाप का बेटा भी बड़ा ही होता है, बालक ने उत्तर दिया – "महाराज जब तक हम आपकी दक्षिणा नहीं देंगें, तब तक हम पानी नहीं पियेंगे।" तारा को प्यास लगी, उन्होंने भी जल नहीं लिया फिर हरिश्चंद्र के जल लेने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तीनों प्राणी विश्वामित्र जी के साथ काशी पहुँच जाते हैं।

काशी पहुँचकर विश्वामित्रजी ने ड्योढ़ी पिटवाई कि सेवक के रूप में एक पुरुष, स्त्री और बालक बिकने को हैं, तीनों का मूल्य साठ भार स्वर्ण है। कोई एक व्यक्ति भी खरीद सकता है, अलग–अलग भी ले सकते हैं और एक साथ मिलकर भी ले सकते हैं। अब इतनीं बड़ी धनराशि कौन दे ?...उसी समय एक कालू नामक भंगी आया और उसने तीस भार स्वर्ण देकर हरिश्चंद्र को, यह ठहराकर खरीद लिया कि मैं जो कुछ कहूँगा, वह सब करना होगा, हरिश्चंद्र ने वादा किया कि मुझे जो भी कार्य सौंपा जाएगा मैं पूरी निष्ठा के साथ उसे पूरा करूँगा।

एक ब्राह्मण ने तारा की ओर देखा तो सोचा कि स्त्री तो सुन्दर है, किसी परिस्थितिवश बिक रही है, चलो हमारी पंडितानी के लिए बर्तन साफ कर दिया करेगी। बीस भार स्वर्ण देकर तारा को खरीद लिया। तारा ने बालक की ओर इशारा करके ब्राह्मण से कहा कि दस भार स्वर्ण देकर इस बालक को भी खरीद लें, ब्राह्मण ने यह कहकर मना कर दिया कि यह अभी बहुत छोटा है, हमारे किसी काम का नहीं, परन्तु थोड़ी देर बाद दयावश यह विचार आया कि इतना छोटा बालक तो माँ के पास ही रहता है, चलो कोई बात नहीं है, बड़ा होकर काम करेगा, ऐसा सोचकर दस भार स्वर्ण देकर बालक रोहित को भी खरीद लिया।

इस प्रकार विश्वामित्र जी को तीनों के बदले साठ भार स्वर्ण मिल जाता है। अब तारा व बालक रोहित ब्राह्मण के साथ चल देते हैं परन्तु बार–बार मुड़कर हरिश्चंद्र की ओर देखते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि अब शायद पुनः हमारा मिलन नहीं हो पायेगा, हरिश्चंद्र तारा को समझाते हैं और कहते हैं कि ये संसार की रीति है कि मरने के बाद सब लोग एक–दूसरे से अलग होते हैं, आज हम जीते जी एक दूसरे से अलग हो रहे हैं, तारा ! मैंने तुमको बेचा, इकलौते बेटे को भी बेच दिया, अब तुम जाओ और भविष्य में कभी मेरी याद मत करना, मुझे सदा के लिए भूल जाओ –

मरके अलग सब होते दुनिया की रीति सदा से ।
जीते जी होते अलग हैं ये नयी रीति यहाँ से॥
डोम ने जो है खरीदा बिक गई मेरी ये किस्मत ।
मैंने ही तुझको है बेचा हाय हुई ये क्या गति॥
क्यों तू लिपट अब है रोती मन को हटा ले तू मुझसे ।
मुझसा कोई भी न होगा दुनिया में ऐसा अभागा ।
इकलौते सुत को भी बेचा, रहा न सुख का धागा ।
क्यों देखती जाती, आँखें हटा ले तू मुझसे ।
तारा तेरे भाग्य का है टूटा सितारा बेचारा ।
मैं जो मिला पति तुझको मत, लेना नाम हमारा ॥
भूल जा जाने के पहले मुझको भुला दे तू दिल से ।
मर के अलग होते दुनिया की रीत सदा से ।
जीते जी अलग हैं ये नई रीत यहाँ से ॥

धर्म का पालन कितना कठिन है ? महाराज हरिश्चंद्र जो कि चक्रवर्ती सम्राट थे आज एक चाण्डाल के यहाँ नौकरी कर रहे हैं। महारानी तारा जिसके आदेश की नौकर प्रतीक्षा करते रहते थे, आज स्वयं नौकरानी के रूप में बर्तन मलने का कार्य कर रही है। बालक रोहित जो कभी अंगरक्षकों के बिना नहीं चलता था, आज मालिक जहाँ भेजता है, वहाँ दौड़कर जाता है। ये तीनों प्राणी बड़ी प्रसन्नता से अपने–अपने कार्य में लग जाते हैं परन्तु विश्वामित्र जी को खुशी नहीं है, वह सोचते हैं कि अब तो ये परीक्षा में पास हो जायेंगें। उन्होंने वासुकि नाग को बुलाया और उससे कहा कि तुम हरिश्चंद्र के पुत्र रोहित को डस लो। वासुकि नाग ने कहा – "महाराज ! मैं निरपराध बालक को कैसे डस लूँ, मेरे डसने का मतलब बालक की मृत्यु। मैं यह जघन्य कार्य नहीं कर सकता।" विश्वामित्र जी धमकी देते हैं कि यदि तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तो मैं तुम्हे भस्म कर दूँगा। वासुकि नाग ने कहा – "महाराज ! मैं निरपराध बालक को नहीं डसूँगा, भले ही आप मुझे भस्म करदें, हाँ, यदि मेरे डसने पर बालक तो समाप्त हो जाएगा परन्तु इतने पर भी हरिश्चंद्र अपने धर्म से विचलित नहीं हुए तो आपको बालक को जीवित करना होगा और राज्य भी वापस करना होगा।" विश्वामित्र जी को विश्वास था कि बालक की मृत्यु के दुःख को हरिश्चंद्र नहीं सहन कर पायेंगे। उन्होंने वासुकि की शर्त को स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण

ने बालक को एक टोकरी लेकर फूल तोड़ने एक फुलवारी में भेजा। वासुकि नाग एक काले सर्प के रूप में उस फुलवारी में आकर छिपकर बैठ जाता है। इधर बालक फूल तोड़ता जा रहा है। आधी टोकरी फूलों से भर चुकी है। उस बेचारे को क्या पता था कि यहाँ मेरा काल बैठा है। वह फूल तोड़ता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था। उसका पाँव वहाँ छिपे हुए काले नाग पर पड़ा, पैर पड़ते ही नाग ने बालक को डस लिया और बालक तत्काल गिर पड़ा, उसका शरीर विष से नीला पड़ गया और वह मर गया।

इस दर्दनाक –दृश्य को वहाँ उपस्थित बालकों ने देखा और घबराकर दौड़कर रोहित की माँ के पास पहुँचकर कहा कि तुम्हारे बेटे को काले सर्प ने डस लिया है और वह समाप्त हो गया है।

उस बेचारी माँ के पास ममता के अलावा था ही क्या? वह ममता भरी माँ बालकों के साथ उस स्थान पर पहुँची जहाँ उसका पुत्र मृत अवस्था में पड़ा था। कैसी हृदय–विदारक परिस्थिति कि आज तारा के पास कफन के लिए कोई वस्त्र भी नहीं है। जिस धोती को पहन रखा था, आधी धोती से अपने तन को ढका और आधी धोती से अपने पुत्र के तन को ढककर उसकी लाश को अपने कन्धे पर रखकर उसका संस्कार करने के लिए श्मशान की ओर जा रही है। मार्ग में उसे पिछली स्मृतियाँ व्याकुल कर देती हैं, वह सोचती है कुछ समय पहले मैं रानी थी, महलों में रहा करती थी, आज दासी बनकर मैं चाकरी कर रही हूँ। हाय ! मुझे इस रात्रि में मौत भी नहीं आती – इस तरह विलाप करती श्मशान में रोहित का संस्कार करने आगे बढ़ती जा रही है –

मेरे कन्धे पे है लाश मुझे आग की तलाश।
ये कैसी है दुनिया मुझे मरने नहीं देती॥
ये अंधियारी है रात, मेरी आखिरी बरात।
ये कैसी है दुनिया.....
कल तक थी मैं रानी महलों में खेला करती।
दासी बनी बिकी दामों में मैं सेवा करती॥
मेरा फूल जैसा लाल, खा गया काल का गाल।
श्मशान की ये धरती मुझे शरण नहीं देती॥
मेरे कन्धे पे है लाश.....

तारा को क्या पता था कि उसके पतिदेव इसी श्मशान में नौकरी कर रहे हैं। हरिश्चंद्र पहरे पर थे, श्मशान में मुर्दो का संस्कार करने वालों से कर वसूल किया करते थे। तारा की दर्द भरी आवाज हरिश्चंद्र ने भी सुनी पर समझ नहीं पाए। सोचा कोई दुखिया जा रहा होगा, उन्हें क्या पता था कि उनकी पत्नी उनके ही बेटे की लाश को लेकर जा रही है। उन्होंने आवाज लगाई – पहले श्मशान का 'कर' दो, उसके बाद संस्कार करना। कोई उत्तर नहीं आया, दुबारा आवाज लगाई फिर भी कोई उत्तर नहीं आया, तीसरी बार हरिश्चंद्र जी मशाल लेकर आये और पुनः आवाज लगाई कि पहले श्मशान का कर दो उसके बाद संस्कार करना। पास में आने पर तारा ने पहचान लिया कि ये तो मेरे स्वामी की आवाज है। वह बोली – स्वामी ! यह आपका पुत्र रोहित है, इसे काले नाग ने डस लिया है, इसकी मृत्यु हो गयी है और मेरे पास कर देने को कुछ भी नहीं है। यह सुनकर हरिश्चंद्र जी दिल थाम कर बैठ गए और प्रभु से प्रार्थना करते हैं– हे प्रभो! मैं अपनी जीवन नौका को आपके हाथ सौंप चुका हूँ, आप इसे डुबायें या बचायें –

ये जिन्दगी की नैया कर दी तेरे हवाले।
चाहे इसे डुबो दे चाहे इसे बचा ले॥
चारो तरफ हैं तूफां आँखों तले अँधेरा।
घबराके अपने हाथों सारे बन्ध खोल डाले॥
अब मैं किसे बुलाऊँ और मैं किसे पुकारूं।
तेरी दया के बल पर बैठा हूँ दिल सँभाले॥

कुछ धैर्य की साँसे लेकर हरिश्चंद्र तारा से बोले – "तारा! तुम मेरी धर्मपत्नी हो, तुमने हर परिस्थिति में मेरा साथ दिया। धर्म की खातिर हम बिके, अब ये अन्तिम परीक्षा है तारा! तुम मुझे धर्म से विमुख मत करो। तारा "कर" तुम्हें देना ही होगा।" हरिश्चंद्र चाहते तो संस्कार हो जाने देते, लड़का तो उन्हीं का था परन्तु अब न कोई पत्नी है, न कोई पुत्र है, धर्म ही सब कुछ है। तारा ने जो धोती पहन रखी थी, उसमें से एक टुकड़ा फाड़कर 'कर' के रूप में देने को तैयार हो जाती है। यह देखकर विश्वामित्र सोचने लगे कि अरे! अब तो ये परीक्षा में पास हो जायेंगे। उन्होंने अपने तपोबल के प्रभाव से ऐसी माया की रचना की कि वहाँ का राजमंत्री कालू भंगी को साथ लेकर वहाँ उपस्थित हो गया। उससे शिकायत की गयी थी कि एक चाण्डालिनी स्त्री आई है, वह बच्चों को मारकर खा जाती है,

एक मरा बालक उसके पास पड़ा है, उसे वह खाने वाली है। राजमंत्री कालू भंगी को अपने साथ इसलिए लाया था कि उसने हरिश्चंद्र को नौकरी पर रखा था और वायदा किया था कि मुझे जो कार्य सौंपा जाएगा, मैं पूरी निष्ठा से उस कार्य को पूरा करूँगा। कालू भंगी ने एक तलवार हरिश्चंद्र के हाथ में देकर कहा कि इस तलवार से इस हत्यारिणी स्त्री का सिर काट दो क्योंकि यह बालकों को मारकर खा जाती है।

कैसा धर्म संकट? हरिश्चंद्र जी जानते थे कि यह मेरी पत्नी तारा है और बालक मेरा पुत्र रोहित है। क्या माँ अपने ही पुत्र को मार कर खाएगी? कैसा झूठा आरोप लगाया गया परन्तु हरिश्चंद्र वचन बद्ध थे, वे कह चुके थे कि मुझे जो भी आदेश दिया जाएगा मैं पूरी निष्ठा से उसका पालन करूँगा।

हरिश्चंद्र उस तलवार को जैसे ही अपनी प्यारी पत्नी का सिर काटने के लिए उठाते हैं, विष्णु भगवान् प्रकट होकर हरिश्चंद्र का हाथ पकड़ लेते हैं। देवगण फूलों की वर्षा करने लगते हैं, आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगती हैं। महाराज हरिश्चंद्र की जय जयकार होने लगती है – महाराज हरिश्चंद्र की जय हो ! जय हो ! जय हो !!!

विश्वामित्र, कालू भंगी, ब्राह्मण , देवराज इंद्र, अपने असली रूप में प्रकट हो जाते हैं। देवता ही कालू भंगी और ब्राह्मण का वेश बनाकर परीक्षा लेने आये थे। विश्वामित्र जी बालक रोहित को जीवित कर देते हैं एवं उनका सारा राज्य वापस कर देते हैं। एक वर्ष तक उनको जो कष्ट रहा, विश्वामित्र जी अपनी एक वर्ष की तपस्या का फल भी प्रदान कर देते हैं। देवराज इंद्र ने हरिश्चंद्र से कहा – "राजन् ! तुम्हारे गुणों की जितनी प्रशंसा की जाय वह तो बहुत थोड़ी है, तुम हमारे साथ सशरीर स्वर्ग चलो।" हरिश्चंद्र बोले – "देवराज ! अपनी प्रजा को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ स्वर्ग नहीं जा सकता, पहले मेरी प्रजा स्वर्ग जायेगी, उसके बाद मैं।" इन्द्र बोले – "तुम्हारी प्रजा के इतने पुण्य नहीं हैं कि सशरीर स्वर्ग जाएँ, तो हरिश्चंद्रजी बोले – "ठीक है, मेरे पुण्यों को मेरी प्रजा को दे दीजिए, मैं उनके पापों को भोगता रहूँगा।" ऐसे आदर्शवान् सत्यनिष्ठ थे महाराज हरिश्चंद्र, जिन्होंने स्वप्न में दिए हुए राज्य को विश्वामित्र जी के लिए प्रत्यक्ष में दे दिया, स्वयं पत्नी, पुत्र सहित बिक गए उन्हें दक्षिणा देने के लिए। इसीलिए लाखों वर्ष बाद भी महाराज हरिश्चंद्र जी का चरित्र बड़े सम्मान से गाया जाता है। उनकी प्रशस्ति में निम्न छंद प्रसिद्ध है –

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत ब्यौहार।
पै दृढ़ वृत हरिश्चंद्र कौ टरै न सत्य विचार॥

जिस मानव के जीवन में आदर्श नहीं वह तो पशु तुल्य है। श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन के विरक्त संत पूज्य श्री रमेश बाबा महाराज के संरक्षण में रहने वाले साधु – संत, साध्वी एवं गुरुकुल के बालक सभी आदर्श युक्त जीवन निर्वाह करते हुए समवेत रूप से नित्य निष्काम आराधना का लाभ लेकर अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं।

श्रीमानमंदिर संस्थान ब्रज को अपने पूर्व रूप में लाने हेतु पर्वतों के संरक्षण, वृक्षारोपण, ब्रज के कुण्ड व सरोवरों के जीर्णोद्धार, यमुना के मुक्तिकरण व शुद्धिकरण, गौमाता की रक्षा तथा भगवन्नाम–संकीर्तन के प्रचार के माध्यम से असंभव कार्यों को संभव कराने के लिए प्रयत्नशील है। आज मानमंदिर सेवा संस्थान के संरक्षण में 'माताजी गौशाला' में लगभग चालीस हजार से अधिक देशी नस्ल की गायें हैं, जिनका मातृवत् पोषण होता है। ये गायें प्रायः वे हैं जिन्हें कत्लखानों से बचाया गया है।

'दीदी जी गुरुकुल' में लगभग १५० बालक–बालिकायें निःशुल्क आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करते हैं और श्रीबाबामहाराज द्वारा आराधित नित्य संगीतमय रसाराधना (पदगान) में लगभग १५० साध्वियाँ तथा १०० साधुजन भावमय नृत्याराधन करते हैं, यहाँ की यह आराधना ही उपरोक्त सभी कार्यों के क्रियान्वयन का स्रोत है। भक्ति–संवर्द्धक ब्रजभावभावित नृत्य–गान के इस रसमय कार्यक्रम (आराधना) को ब्रजवासी व श्रद्धालु भक्तजन महारास (दिव्यरासोत्सव) कहते हैं। यह आराधना नित्य सायं साढ़े छः से साढ़े सात बजे तक एवं श्रीबाबामहराज का प्रातःकालीन सत्संग साढ़े आठ बजे से साढ़े नौ बजे तक www.maanmandir.org से नित्य आप अपने स्मार्ट फोन से भी देखकर आराधना एवं सत्संग का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

❑❑❑

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च
(महापुरुषन की दुर्लभता)

व्यासाचार्य पं. महेशचन्द्र शास्त्री, मानमन्दिर, गह्वरवन, बरसाना।

महद्पुरुषन कौ सत्संग प्राप्त होनों तो दुर्लभ है और प्राप्त हैवे पै हु पहचान लैनो और कठिन है कि ये महापुरुष हैं और पहचानवे पै उनको संग अमोघ होय, कहवे को तात्पर्य है कि साधु संग से अवश्य मंगल होय।

'महत्सङ्गस्तु दुर्लभः' महापुरुषन को मिलनो बहुत कठिन है। यासों कठिन नांय कि महापुरुष संसार में हैं नाँय लेकिन श्रद्धा के अभाव में और सच्ची चाह के बिना उन सन्तन कूँ जानिबो दुष्कर है, उनकूं ढूँढ़वे कहूँ वन पर्वतन में जायवो आवश्यक नाँय, महापुरुष तो हमारे तुम्हारे आस-पास ही विचरण करें व विराजें हैं फिरहू उनको मिलनों कठिन जान परे क्योंकि पापीजन सब जगह शंका करें जैसे गह्वरवन में श्रीमौनीबाबा विराजते हते तौ उनकूं जीतेजी बहुत कम लोग ही जान पाए बहुत तो उनकूं पागल समझते। देह त्याग के उपरान्त कहन लगे, बाबा सिद्ध हतो ऐसे ही शुकदेवजी महाराज कूँ लोग नहीं जान पाये, स्त्री बालक उनको पागल समझ कैं उनके ऊपर धूल-पत्थर फैंके हते। संत मिल भी जाएं तो लोग दोष दर्शन करें, जगत में दोष दर्शन ते बड़ो पाप दूसरो नाँय। दोष-दर्शन के कारण सन्तन के वास्तविक स्वरूप कूँ जीव न जान पावे, पापवृत्ति को मूल स्वार्थ ही है, हृदय में जब ताईं स्वार्थ कौ लेशमात्र हू विद्यमान है तब तक जीव भोगासक्ति रूप पापमय बंधन सों मुक्त नाँय है सकै, जा काहू नें स्वार्थ कूँ त्याग दियो तापै संसार को कोई प्रलोभन अपनों प्रभाव नाँय डार सकै। पापमयी वृत्तिन को शमन या कुसंस्कारन को शमन् सन्त-कृपा सों ही संभव है सकै। महद्-उपासना सों ही दैवीवृत्तिन को उत्कर्ष होय औरे अंतःकरण शुद्ध होय ता पांछें भजन बने, भाव-भक्ति में प्रवेश होय, प्रिया-प्रियतम को अनुभव होय किन्तु वो भाव-भक्ति भावुक जनन के संग से ही आवे है।

नैन निकट काजर बसै पै दर्पण दरशाय ।
ज्यों साधुन के संग बिन हरि छवि हिय न आय॥
गह्वरवन और खोर संकरी नित नयी लीला होय।
अनुभव तबही होत है जब भाव सरस हिय होय॥

जिन संतन के संग सौं भक्ति आवै वे संत कैसे होंय, भगवत रसिक जी ने उनके लक्षण कहे हैं, उनकूं ध्यान धर के सुन लेओ भैया -

इतने गुन जामें सो सन्त।
श्री भागवत-मध्य जस गावत, श्रीमुख-कमलाकंत।
हरि को भजन साधु की सेवा, सर्वभूत पर दाया॥
हिंसा लोभ दम्भ छल त्यागे, विष सम देखे माया।
सहनशील आशय उदार अति, धीरज सहित विवेकी॥
सत्य वचन सबको सुखदायक, गहि अनन्यव्रत एकी।
इन्द्रिय जित अभिमान न जाके, करे जगत को पावन।
भगवत रसिक तासु की संगति, तीनहु ताप नसावन॥

भागवत में कपिल भगवान् ने सन्त के लक्षण कहे -

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

(भागवत ३/२५/२१)

सन्त तितिक्षु होंय, सभी प्राणियों के प्रति करुणा होय। समस्त जीवों के सुहृद होंय, काहू के प्रति शत्रुभाव नाँय होंय, शांत, सरल स्वभाव और संत-महापुरुषन को सम्मान करें और प्रभु से अनन्य प्रेम करें।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७/१९)

सब कुछ परमात्मा ही हैं, ऐसो महात्मा अत्यंत दुर्लभ है। जगत में सबइ सन्त नाँय होंय, महात्मा बहुत थोड़े होंय, अधिकाँश लोग जगत के विषयन में लीन हैं। या कारण सों महात्मा मिलिवो कठिन है, कहूँ मिलें तो उनकूँ जानिवों कठिन होय है, वे ऐसी रहनी रहें कि लोग भ्रमित है जाँय।

क्वचिच्छिष्टाः क्वचिद भ्रष्टाः कश्चिदभूतपिशाचवत्।
नानारूप धराः कौल्य विचरन्ति महीतले॥

कहूँ सभ्यशिष्ट रूप में, कहूँ अपने कूं आचार-भ्रष्ट दिखलावें। कहूँ भूत-प्रेत समान उन्मत बनें या प्रकार सो नाना रूप बनाय के महद्-पुरुष विचरण करें याही सों राजा रहूगण नमन करे

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः।
ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम्॥

(श्रीमद्भागवत ५/१३/२३)

अमोघश्च – संत कहाँ, कैसे किस रूप में रहें, यह ज्ञान सहज नाँय दुष्कर है किन्तु जानवे पै उनको संग व्यर्थ नाँय जायो करे।

यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्वे प्रवर्तते।
तद्दृष्टि गोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकै॥
खेचराः भूचराः सर्वे ब्रह्मविद दृष्टि गोचराः।
सद्यः एव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः॥

(वराहोपनिषद)

जा संत की अनुभव पर्यन्त बुद्धि तत्व में स्थिर है वा संत की जा–जा पै दृष्टि परेगी वे जन समस्त पातकन सों मुक्त है जाँय, तत्वज्ञ, ब्रह्मवेत्ता संत की दृष्टि परवे पै खेचर–भूचर स्थावर वृक्षादि हूँ कोटिजन्मार्जित अघराशि से मुक्त है जाँय, फिर जानें संत की शरणागति लई है ताके कल्याण में कहा सन्देह है।

श्रीभागवतजी में परीक्षित ने संत महिमा कही

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।
किं पुन दर्शनस्पर्श पादशौचासनादिभिः॥

(श्रीमद्भागवत १/१९/३३)

आप (शुकदेव) जैसे महात्माओं के स्मरण करबे मात्र सों ही गृहस्थ जनन के घर तत्क्षण पवित्र है जाँय फिर कहूँ दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन और आसन दानादि को सुअवसर मिल गयो तो कहना ही कहा वो जीव तो धन्य है जाय।

विष्णु भगवान् के सम्मुख दैत्य नाँय ठहर सके वाही प्रकार सों आपकी संनिधि सों बड़े–बड़े पापन को नाश है जायो करे।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा आभीरकङ्कायवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

(श्रीमद्भागवत २/४/१८)

श्रीशुकदेवजी कहें किरात, हूण, आन्ध्र, पुल्कस (कसाई), पुलिन्द (भील), आभीर, कंक, यवन, खस इन पाप जातिन में उत्पन्न लोग हू जब भक्त–शरणागत होंय तौ पवित्र है जाँय, उनकूँ भगवान् की शरण में जावे में बाधा आवे, वै कैसे समझे भगवान् कौन है या ताँयी 'यदपाश्रयाश्रयाः' महाभागवतन की शरण में आवे पै उपरोक्त पाप–जाति में उत्पन्न मनुष्यन को हू उद्धार है जाय, भक्ति प्राप्त कर लें, संतकृपा सों वाल्मीकिजी, अजामिल, गणिका, रसखान, घाटमादि को उद्धार भयो।

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च॥

(श्रीमद्भागवत ११/२६/३४)

भगवान् कहें – संत नेत्र दें जैसे सूर्योदय हैवे पै ही संसार की वस्तुएं दीखें वैसे ही संत मोकूं (श्रीकृष्ण) दिखलावें हैं, यासों संत ही साँचें देव हैं। साँचें स्वजनय अपनी आत्मा और मेरे (श्रीकृष्ण) स्वरूप हैं किन्तु ऐसे सन्त भगवत्कृपा सों ही मिलें। श्रीनारदजी कहें हैं 'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव' वे संतजन अपनी कृपा (स्वानुग्रह) से ही सुलभ होंय, महापुरुष अपनी स्वेच्छा से ही मिलें। वे जब अपनी पहचान या परिचय देनों चाहें तबहीं कोई जान सके। अन्यथा ऐसों संयोग बनेगो कि तुम्हारी श्रद्धा संत में नाय होयगी जब संत की स्वयं की कृपा नाय होय तब तक संत नहीं मिल सकें।

विभीषण जी कहें हैं –

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

(रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड – ७)

आगे नारद जी कहें भैया सत्संग ही सो भगवद्भक्ति मिले।

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम यासों महत्संग की ही साधना करो वाही को सेवन करो। जीवन में यही प्रयत्न करे, जासों सत्संग मिले, महापुरुषन को संग मिले। उनमे श्रद्धा करे उनकी आज्ञा को पालन करे तन, मन, धन सों सेवा करे, संत जनन की कृपा सों ही प्रेमा भक्ति प्राप्त होयगी।

भगवान् और उनके भक्त जनन में कोई भेद नाँय, भक्त की प्राप्ति होनो भगवान् की प्राप्ति है।

ब्रजरस रसिक संत श्रीहरिराम व्यासजी महाराज कहें हैं

कहत सुनत बहुतक दिन बीते, भक्ति न मन में आई।
श्याम कृपा बिन साधु संग बिन, कहो कौंनें रति पाई॥

(व्यासवाणी)

महापुरुषन की सेवा कूं मुक्ति को द्वार कह्यो है और स्त्रीसंगी कामियों के संग कू नरक द्वार कह्यो है।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

(श्रीमद्भागवत ५/५/२)

यासो सबको सार याही में है – श्रद्धापूर्वक कपट छोड़कें, निष्कपट भाव से, तन–मन–धन से संत–गुरुजनन की सेवा करें।

❑❑❑

मानमंदिर की वर्तमान गतिविधियाँ

मीराबाई की आराधना-भूमि में मानमन्दिर की बालाराधिकाओं द्वारा हुई भक्तिरसधारा प्रवाहित

मानिनी श्रीराधारानी के मानभवन में जिनका निवास हो तथा '**मरना तेरी गली में, जीना तेरी गली में**' ऐसी अनन्योपासना के साथ विगत ६५ वर्षो से अखण्ड ब्रजवास कर रहे परम विरक्त संत पूज्य श्रीरमेशबाबाजीमहाराज के नित्य सत्संग का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हो, वे भला स्वात्मलाभ तक ही सीमित कैसे रह सकती हैं...!! ८ से १० वर्ष तक की अल्पायु बालिकाएँ मानमंदिर सेवा संस्थान से लोककल्याणार्थ सर्वत्र जा-जाकर भगवत्प्रेम का वितरण करती हैं। समग्र राजस्थान की ही गौरवभूता नहीं अपितु जगतपावनी 'श्रीमीराजी' के क्षेत्र चित्तौड़ के निकट "साँवरियाजी" में दिनाँक ०८/०७/२०१७ से १६/०७/२०१७ तक **बालसाध्वी मधुवनी** ने अपनी सहयोगिनी बालसाध्वियों विरागा, दया तथा साध्वी मीरा एवं साध्वी वत्सला के साथ '**गोपिकावतार श्रीमीराबाईजी**' के पावन चरित्र की भावमयी कथा व भगवन्नाम-महिमा से भक्तों का आनंदवर्द्धन किया, अनेक गाँवों में प्रभात-फेरी चलाने वाली इन बालाओं ने वहाँ भी हरिनाम प्रभातफेरी प्रारम्भ करा दी।

फिजी रेडियो पर साध्वी श्रीजी द्वारा फिजीवासियों को आध्यात्मिक संदेश

प्रश्न - भारतवर्ष से पधारी बाल साध्वी श्रीजी शर्मा का हम फिजी रेडियो स्टेशन पर स्वागत करते हैं। यह तो आपको ज्ञात होगा कि यहाँ के लोग मूलत: भारत के निवासी हैं। भारत जब ब्रिटिश शासन के आधीन था, उस समय अंग्रेज लोग भारतियों को मजदूरी कराने के लिए फिजी लाये थे, तब से वे यहीं बस गए, जो कि हमारे पूर्वज थे। आजकल आप फिजी प्रवास पर हैं और यहाँ पर भारतीय संस्कृति से लोगों को अवगत करा रही हैं तो हम यह जानना चाहेगें कि यहाँ के लोगों से मिलकर आपको कैसा लगा ?

उत्तर - बहुत अच्छा लगा। आज भी यहाँ के लोगों के रहन-सहन से लगता है कि ये लोग निश्चित ही भारत से आये हैं जो कि हमारे सनातन धर्म को लेकर चल रहे हैं और अभी तक अपने धर्म को नहीं भूले हैं।

प्रश्न - प्रथम बार जब भारतीय लोग फिजी में आये थे तो केवल चार रामचरितमानस ग्रन्थ लेकर यहाँ आये थे। उन्हीं रामचरितमानस के कारण यहाँ के लोग सनातन धर्म को भूले नहीं हैं। बहुत कष्ट उठाये हमारे पूर्वजों ने लेकिन फिर भी अपने सनातन धर्म को छोड़ा नहीं और बहुत अच्छी तरह से यहाँ स्थान-स्थान पर सनातन धर्म को स्थापित किया है। कई मंदिरों का निर्माण कराया, यह हमारे लिए गर्व की बात है। हम आपके विषय में जानना चाहेंगे कि एक तो आप युवा हैं, दूसरा फिजी में यह प्रचलन नहीं है कि कोई बालिका इस तरह से प्रचार-प्रसार करे। आप अपने विषय में यह बताइये कि आप भारत में किस स्थान से आयीं हैं और किस तरह से आपने सोचा कि हम फिजी के लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान दें।

उत्तर - हम लोग मथुरा वृन्दावन के समीपवर्ती श्रीराधारानी की लीलाभूमि श्रीधाम बरसाना से आये हैं। मेरा जन्म भी वहीं का है। हमारे पूज्य गुरुदेव विरक्त संत श्री रमेश बाबा महाराज जी हैं जो कि बरसाने में ही विराजते हैं, वह ब्रजभूमि के बाहर अन्यत्र कहीं नहीं जाते हैं। वह लगभग ६५ वर्ष से ब्रजवास कर रहे हैं। हमारे दादा-दादी के भी वही गुरुदेव थे। ब्रज उस स्थान को कहते हैं, जहाँ भगवान् राधामाधव ने अवतरित होकर अनेकों रसमयी लीलायें की हैं। मेरा जन्म ही ऐसे स्थान पर हुआ है जहाँ बचपन से ही मुझे आध्यात्मिक परिवेश मिला है। भौतिकतावादी वातावरण से मेरा परिवार दूर रहा है। बचपन से ही मुझे पूज्य गुरुदेव महाराज के सत्संग, कथा-कीर्तन का ही वातावरण उपलब्ध हुआ। इसलिए मेरे लिए आध्यात्मिक जीवन और उसका प्रचार-प्रसार जटिल कार्य नहीं रहा। हमारे घर का वातावरण भी भक्तिमय है और मुझे अपने माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों से भक्ति के संस्कार विरासत में ही मिले हैं।

प्रश्न - फिजीवासियों की यह हार्दिक अभिलाषा रहती है कि भारत के तीर्थस्थलों का दर्शन करने जायें, ब्रजभूमि जायें और वहाँ मथुरा-वृन्दावन आदि लीलास्थालियों का दर्शन करें, कहाँ भगवान् कृष्ण ने जन्म लिया था, कहाँ पर क्या-क्या लीलायें की और जब भारत से आप जैसे कोई संत आते हैं और उनके मुख से भगवान् श्री कृष्ण की लीलाओं का श्रवण करते हैं तो उनकी अभिलाषा और तीव्र हो जाती है। हमारे यहाँ के जो सम्पन्न लोग हैं, वे जब ब्रज जाते हैं और लौटकर ब्रज के बारे में, श्रीगोवर्धन पर्वत के बारे में, वृन्दावन के बारे में, राधाकुण्ड के बारे में, बरसाना के बारे में बताते हैं तो सुनकर बहुत अच्छा लगता है। अब आपसे यह प्रश्न है कि आप जो प्रवचन करती हैं, उसका उद्देश्य क्या रहता है, वह भक्तिवाद से सम्बंधित होता है या किसी ग्रन्थ विशेष पर आधारित होता है। आप अपने प्रवचन में लोगों को किस तरह से क्या-क्या बातें बताती हैं?

उत्तर - मेरा प्रवचन किसी ग्रन्थ विशेष पर तो आधारित रहता ही है और वह है श्रीमद्भागवत। श्रीमद्भागवत का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि यह एक पोथीमात्र है अपितु भक्त-चर्चा, भगवान् की चर्चा यही सब भागवत का विषय है। अभी तो मैं श्रीमद्भागवत का ही प्रवचन करती हूँ। भक्तों की कथा का एक और ग्रन्थ है "भक्तमाल", उससे भी कुछ भक्त-चरित्र सुनाती हूँ। इसके अतिरिक्त इन विषयों पर भी चर्चा होती है कि भगवान् ने अवतार क्यों ग्रहण किया, क्या-क्या लीलायें की, उनके अवतार का क्या उद्देश्य है? कथा के माध्यम से लोगों को यह बताने की कोशिश की जाती है कि जीवों पर कृपा करने के लिए भगवान् अवतार लेते हैं, सुन्दर-सुन्दर लीलायें करते हैं जिनका श्रवण कर जीव भगवत्परायण हो जाएँ और अपना कल्याण कर सकें।

प्रश्न - अवश्य ही अति उत्तम बातें आपने बतायीं। वैसे देखें तो हमारे धर्म में कई ग्रन्थ हैं, जैसे - चार वेद हैं, अठारह पुराण हैं, उपनिषद इत्यादि हैं तो क्या आप अपने प्रवचन में जीव से सम्बंधित, आत्मा से सम्बंधित, आत्मा के सफर से सम्बंधित जानकारी भी देती हैं ?

उत्तर - बिलकुल ! देखिये श्रीमद्भागवत में वर्णन आता है कि वेदव्यास जी ने वेद, पुराण, तंत्र-मंत्र, इतिहास, आदि कई ग्रंथों की रचना की लेकिन उन्हें संतोष नहीं हुआ, मन को शान्ति नहीं मिली। एकबार नारद जी उनके आश्रम में पधारे तो उन्होंने व्यासजी से पूछा कि आपने इतने सारे ग्रंथों की रचना की है, इतना बड़ा कार्य किया है फिर भी आप खिन्न क्यों दिख रहे हैं ? व्यासजी बोले कि इसका कारण मैं स्वयं समझ नहीं पा रहा हूँ। नारद जी, आप तो सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं, आप ही इसका समाधान कीजिये। तब नारदजी ने बताया कि आपने वेदों का विभाग, पुराण, महाभारत आदि ग्रंथों की रचना तो बहुत की है लेकिन अभी तक आपने भगवान् श्रीकृष्ण का गुणगान नहीं गाया। अब आप ऐसा ग्रन्थ बनाइये जिसमें केवल और केवल श्रीकृष्ण गुणगान हो, श्रीकृष्ण चर्चा हो। नारद जी के उपदेशानुशार व्यासजी ने श्रीमद्भागवत की रचना की, इसके बाद उन्होंने किसी अन्य ग्रन्थ की रचना नहीं की। श्रीमद्भागवत में जीव या आत्मा की विस्तार से चर्चा की गयी है कि जीव मृत्यु के बाद कहाँ जाता है, मृत्यु के पश्चात कर्मो के अनुसार उसकी क्या गति होती है?

प्रश्न - कई बार लोग भगवान् या अध्यात्म सम्बन्धी विषयों पर काफी तर्क-वितर्क करते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है, यह तो बिल्कुल असम्भव है, ऐसा कभी हो नहीं सकता है। उन लोगों को हम क्या जवाब दें ? आध्यात्मिक विषयों को तर्क की दृष्टि से देखने वाले लोगों के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर - आपने यह प्रश्न पूछा तो मुझे याद आया कि लोग अक्सर ऐसे प्रश्न करते हैं कि भगवान् अवतार क्यों लेते हैं, उन्हें अवतार लेने की क्या आवश्यकता है, ऐसा कब हुआ, क्यों हुआ? इन सब बातों का कोई औचित्य नहीं होता है। उन लोगों को हम क्या जवाब दें, ऐसे प्रश्न करना ही गलत है, क्योंकि रामायण में कहा गया है -

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।

अत: आध्यात्मिक विषयों को, भगवान् की लीलाओं को तर्क से नहीं समझा जा सकता। जैसे कोई यह पूछे कि भगवान् ने वसुदेव जी के यहाँ भी जन्म लिया और नन्दबाबा के यहाँ भी जन्म लिया, दो जगह एक ही पुरुष का जन्म कैसे सम्भव है? अब आप भगवान् की लीलाओं को तर्क की दृष्टि से, शंका के द्वारा नहीं समझ सकते। भाव से समझेगें तो सब एक ही बार में समझ में आ जायेगा और अगर आप केवल तर्क करेगें तो आप कभी भी, किसी भी जन्म में उन प्रभु की लीलाओं को नहीं समझ पायेंगे, आपका मन हमेशा उलझन में बना रहेगा। भगवान् की लीला-कथायें भावग्राही हैं, भाव वाला बड़ी जल्दी भगवान् को पा लेता है।

प्रश्न - लोग तार्किक स्वभाव के होते हैं, इस कारण ऐसे लोग कभी-कभी कुकथाओं की ओर चले जाते हैं।

उत्तर - हाँ, वे इस युग में भी हैं। राम जी बाद में आते हैं और रावण पहले आ जाता है। श्रीकृष्ण बाद में आते हैं और कंस पहले आ जाता है। ऐसे लोग पहले से ही तैयार रहते हैं, सृष्टि का संतुलन बना कर रखते हैं।

प्रश्न - इतनी देर आपसे चर्चा की, बड़ा अच्छा लग रहा है, मन तो कर रहा है कि हम आपसे कुछ प्रवचन भी सुनें, पर क्या करें, समय का अभाव है। फिजी में कई स्थानों पर आपकी कथाएं हो रही हैं, हम ऐसा मौका अवश्य निकालेंगे कि हम भी वहाँ जायें और आपके मुख से कुछ हरिचर्चा सुनें। फिजी में आपकी कथाओं की जो प्रतिक्रया हो रही है, क्या आप उससे संतुष्ट हैं ? या आप उसमें कुछ और वृद्धि चाहती हैं ?

उत्तर - कई जगह बहुत अच्छी प्रतिक्रया हुई, लोगों ने कथा का लाभ भी लिया। लोगों की संख्या भी काफी अधिक रही लेकिन बड़े दु:ख की बात है कि कई जगह ऐसा भी है, जहाँ लोग लाभ नहीं ले पाये। ये कलियुग की चाल है कि वह लोगों को भगवान् की तरफ मुड़ने नहीं देता, लोगों को कथा-कीर्तन में आने नहीं देता। यहाँ के लोग धार्मिक तो हैं, यहाँ जो कथा हो रही हैं, इतना अच्छा आयोजन हो रहा है लेकिन लोग कम संख्या में उपस्थित होते हैं। हमें लोगों की भूख नहीं है लेकिन हम यह चाहते हैं कि लोग जितना अधिक से अधिक हो सके, इस आयोजन का, इस कथा-कीर्तन का लाभ लें, यही हमारा मुख्य उद्देश्य है।

❑❑❑

गुरुकुल बालवर्ग

पतन का मूल कारण – कुसंग

१४ वर्षीया- चन्द्रिका दासी

इन्द्रियों या शरीर का नाश सर्वनाश नहीं है, बल्कि बुद्धि का नाश सर्वनाश है। बुद्धि यदि कुछ अंशों में जीवित है तो उसके बचने की संभावनाएं हैं। बुद्धि का नाश कुसंग से होता है। 'कुसंग' विषयों से भी अधिक विनाशक है। कुसंग देने वाले बहुत मीठे ढंग से कुसंग देते हैं और जीव उनके चक्कर में फँस जाता है। जो बुराई, बुराई के रूप में आती है, उससे तो बचा जा सकता है परन्तु जो बुराई अच्छाई के रूप में आती है, वह सर्वनाशक होती है।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥

(रामचरितमानस, अयोध्याकांड - २२)

कैकेयी को मन्थरा ने इतने मीठे ढंग से कुसंग दिया कि वह उसकी चाल को समझ नहीं पाई और उसके जाल में फँस गयी। गोस्वामी जी कहते हैं कि - मंथरा की बात सुनने में तो कोमल हैं, पर परिणाम में अत्यधिक कठोर हैं मानो वह शहद में घोलकर जहर पिला रही हो। कैकेयी कौशल्या से अधिक राम जी से प्रेम करती थी परन्तु मंथरा के कुसंग के कारण उसने अपने घर का सर्वनाश कर दिया। इसी प्रकार हनुमान जी भी कालनेमि के चक्कर में आ गए। यहाँ तक कि वह कालनेमि के शिष्य बनने के लिए तैयार हो गये और उसके पास जाकर उन्होंने मस्तक नवाया। कालनेमि कपट से मुनि का वेष बनाकर एक आश्रम में बैठ गया तो उसे देखकर हनुमान जी भी मोहित हो गए।

जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥

(रामचरितमानस, लंकाकाण्ड - ५७)

अच्छे से अच्छे साधक भी कुसंग के कारण नष्ट हो जाते हैं।

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई॥

(रामचरितमानस, अयोध्याकांड - २४)

कुसंग को पहचानना बड़ा कठिन है। कपटी मुनि के चक्कर में प्रतापभानु जैसे धार्मिक राजा को रावण बनना पड़ा। एक बार प्रतापभानु शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। दुर्गम वन में वह अपने साथियों से बिछुड़ गया और भटक कर वहाँ पहुँच गया जहाँ उसका एक पुराना शत्रु राजा उससे बदला लेने के लिए कपटी मुनि का वेष धारण करके बैठा था। प्रतापभानु को असह्य तृषा ने व्याकुल कर दिया। प्रतापभानु अत्यधिक प्यास के कारण व्याकुलता में उस कपटी मुनि को पहचान न सका।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - १५८)

सुन्दर वेष देखकर राजा ने उसको महामुनि समझा। जीव कुसंग को समझ नहीं पाता है अत: हमको सारे सम्बन्ध ईश्वर से ही मानने चाहिए।

गुरु पितु मात बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - १६)

माता-पिता, गुरु आदि भी मोह के वशीभूत होकर कुसंग देते हैं। भगवान् से बड़ा हितैषी कोई नहीं है। माता-पिता, स्त्री, पुत्र, भाई-बहन, गुरु आदि भी हितैषी का रूप बनाकर जीव को कुसंग देकर उसका सर्वनाश कर देते हैं किन्तु भगवान् कृपा करते हैं और कुसंगियों को असफलता प्रदान कर अपने शरणागत की रक्षा करते हैं।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड - १२)

शिव जी ने पार्वती से कहा- हे पार्वती! जगत में श्री रामजी के समान हित करने वाला गुरु, माता-पिता, भाई-बंधु कोई नहीं है। कुसंग इतना खतरनाक होता है कि अपने पूर्व जन्म में ही ध्रुव जी को भगवत् प्राप्ति होने वाली थी। वह जंगल में तपस्या कर रहे थे, उसी समय एक राजा अपने राजसी वैभव के साथ उनका दर्शन करने के लिए आया। उसे देखकर ध्रुव जी के हृदय में राजसत्ता प्राप्त करने की वासना उत्पन्न हो गई थी, उसी का परिणाम था कि उन्हें पुनर्जन्म लेना पड़ा और भगवत्प्राप्ति के पश्चात् भी राजसुख भोगना पड़ा। भगवत्कृपा कैसे होती है? देखो, भगवान् ने विमाता के द्वारा ध्रुव जी के गाल पर एक चाँटा लगवा दिया और वह अपमान ही भगवान् के मिलने का कारण हुआ।

स चिन्तयन्नित्थमथाश्रृणोद् यथा
मुने:सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्य:।
स साधु मेने नचिरेण तक्षका-
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम्॥

(भागवत १/१९/४)

परीक्षितजी को जब ऋषिकुमार के शाप का पता चला कि तक्षक मुझे डसेगा तो वे दु:खी नहीं हुए बल्कि उन्होंने सोचा कि मैं बहुत दिनों से संसार में आसक्त हो रहा था। शाप के बहाने अब मुझे भगवान् को प्राप्त करने का अवसर मिला। यह पराकाष्ठा की श्रद्धा थी। मौत आ रही है लेकिन उन्होंने उसे कृपा मान लिया।

शुक्राचार्य जी बलि को दान देने से रोक रहे थे, उनको कुसंग दे रहे थे परन्तु उन्होंने गुरु आज्ञा को नहीं माना। भरत जी को कैकेई कुसंग दे रही थी परन्तु भरत ने अपनी माँ की बात नहीं मानी। विभीषण को रावण ने राम से विमुख होने की आज्ञा दी परन्तु उन्होंने उसका पालन नहीं किया। जिस मनुष्य के चित्त में राग-द्वेष होता है वह भक्तिहीन हो जाता है। दुर्योधन को भगवान् स्वयं शिक्षा देने गए किन्तु उसने अपना द्वेष नही छोड़ा।

महापुरुषों में सच्ची श्रद्धा होने पर कुसंग का मनुष्य के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह सन्मार्ग में दृढ़ता से लगा रहता है।

अनन्य प्रेममयी भक्ति

१० वर्षीय – रामनिवास

श्रीमद्भागवत में सबसे पहले जब शौनकजी ने सूतजी से परमार्थ सम्बन्धी प्रश्न किये, तब सूतजी ने मंगलाचरण करके उत्तर में यह श्लोक कहा –

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति॥

(भागवत१/२/६)

मनुष्य के लिए परम धर्म वही है, जिससे भगवान् के प्रति अहैतुकी भक्ति हो। प्रह्लादजी ने भी कहा है –

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

(भागवत ७/६/१)

भगवान् ने हमें कृपा करके यह दुर्लभ मानव-देह देकर धरा- धाम में जन्म दिया। अगर हम स्वर्ग में पहुँच जाते तो वहाँ भक्ति नहीं कर सकते थे क्योंकि वहाँ केवल विषय-भोग ही हैं। श्रीभगवान् ने गीताजी में कहा है –

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २/४४)

जिनकी बुद्धि विषय-भोगों में लगी हुई है, उनका मन मुझमें नहीं लग सकता। श्रीभगवान् ने हमारे ऊपर बहुत ही कृपा करी और श्रीशुकदेव रूप में भू-लोक में आकर रसालय श्रीभागवतजी का रसगान करके हमलोगों को बतलाया कि सुदुर्लभ मनुष्य का शरीर प्राप्त करके रसमयी आराधना (नृत्य-गान) करनी चाहिए। सबसे बड़ा धर्म यही है कि श्रीभगवान् में विशुद्ध प्रेम हो जाए। भक्ति तो बहुत लोग करते हैं, कोई राजस भक्ति करता है, कोई तामस भक्ति करता है और कोई सात्विक। श्रीकपिल भगवान् ने माता देवहूति से कहा है कि हे माँ ! वास्तविक भक्ति तो तीनों गुणों से ऊपर (गुणातीत) होती है, जिसे अहैतुकी अथवा निर्गुणाभक्ति कहते हैं।

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

(भागवत ३/२९/१२)

ऐसी ही भक्ति से भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं। ऐसी ही भक्ति श्रीमीराबाई, श्रीसूरदासजी और गोस्वामी तुलसीदासजी आदि प्रेमी भक्तों ने की। अहैतुकी भक्ति क्या है? अहैतुकी भक्ति का अर्थ है कि भक्ति किसी भी हेतु को लेकर न की जाए। प्रभु-प्रेम के प्रतिमूर्ति श्रीभरतजी महाराज ने कहा है –

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २०४)

अहैतुकी भक्ति वृत्रासुर में थी, उसने युद्धभूमि में भी भगवान् से यही याचना की-

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥

(भागवत ६/११/२५)

हे प्रभु ! मैं आपके अतिरिक्त स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भू-लोक अथवा रसातल का राज्य, योग की सिद्धियाँ तथा मोक्ष तक की कामना नहीं करता। जब हम कुछ नहीं चाहते तभी अकिंचन बन सकते हैं। श्रीनारदजी का कथन है –

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा॥

(भागवत ७/१५/१५)

धर्म के लिए तथा जीवन-निर्वाह के लिए भी धन की कामना नहीं करनी चाहिए क्योंकि जब भक्त भगवान् से भी कुछ नहीं चाहता तो उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः ही हो जाती है। जब जीव कामनाओं को छोड़ता है तो भगवान् उसकी परीक्षा लेते हैं। श्रीप्रह्लादजी ने कहा है –

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ।
भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो॥

(भागवत ७/१०/३)

'हे भगवन् ! आप अपने सेवक के स्वभाव को जानने हेतु वरदान आदि माँगने के लिए कहते हैं।' भगवान् श्रीरामजी ने काकभुशुण्डिजी की भी परीक्षा ली थी –

काकभुसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ८३)

भगवान् ने उन्हें सभी चीजों का लोभ दिया लेकिन उन्होंने भक्ति ही मांगी –

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥
भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिन्धु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ८४)

तो भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें सब कुछ दे दिया –

सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ८५)

इसलिए एकमात्र विशुद्ध प्रेमप्रद अहैतुकी (निष्काम, अनपायनी, केवला) भक्ति से ही श्रीभगवान् परम प्रसन्न होते हैं।

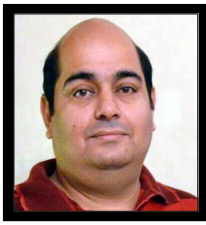

GLORY OF DHAM

A lecture by Shri Ramesh Baba Ji Maharaj dt. 5/2/04

Translation By : Shri Ravi Monga, New Delhi

Not before that, ever. Being scholarly does not help at all. Only when one's isht, Dhaami takes seat in one's heart, can one obtain Dham Nistha. Prior to this, it's a vacuum. People are found debating "Is God not all pervading and Omni present? Where is he not? They come up with such ideas that one is forced to remain silent. They say that we are trying to prove that God is not all pervading. All I want to say to them is that O dear ones, we absolutely agree that God is all pervading but all we are doing is believe in what has been declared by true saints of the past. If you want to sue me, you would rather sue those mahapurush (saints). I am a mere parrot and have memorized these facts by heart and keep repeating them. God, the all pervading is like a tree. It happens that a fruit appears on this tree. Tell me, what is better to eat, the tree or the fruit from the tree. Of course, the fruit. I shall explain everything with scriptural evidences. If I eat the fruit, it does not mean that I have denounced the tree or have chopped it off. The relishing fruit had appeared from the tree and the fact is that by my eating it, my Nistha for the tree only grew in the process. The one who sees the tree and its fruit as different entities is a deluded person. God, the master of infinite universes does stay only in Braj. They say that by saying this we are limiting him, under stating his glories. They keep coming up with big arguments. Hear this

Bhuan anek roam prati jaasu
Yeh prabhuta kachu bahut naa taasu.

(Ramcharitmanas uttarkand-22)

People say that we have reduced the master of infinite universes to just a master of a small place like Awadh. No we did not. One should ask the tree why it bears fruit. Why does tree not turn into a big fruit? Should one eat the whole tree? Should one eat the barks of a mango tree?

Soaoo jaane kar phal yeh leela
Kahahi mahamunivar damseela

(Ramcharitmanas uttarkand-22)

It is not that we reduced God into a limited size. We only turned him into a fruit of nectar. This is so as only a fruit can bear nectar and not a tree. Hence, one should understand the glories of Dham. If one does not understand these glories then he shall not obtain the nectar of dham and is a fool no matter how brilliant a scholar he is. It is not me saying this, it is Goswami Tulsidasji saying it and if you wish to sue somebody it should be him and not me. Even He put up a caveat as he actually said this principal has been declared by great saints of the past. You never know when a critic can come up with a bold new negative counter point. Hence, he said that really great saints have concluded this concept that when god turns into a dweller of one place only then true nectar can be formed. It is after understanding these glories can one come to relish the nectar of God.

Sou mahima khages jinh jaani
Phiri ehi charit tinhahu rati maani.

(Ramcharitmanas uttarkand-22)

O Garud ji, people who have understood these glories then relish the nectar that follows while (baba says) people like me only come up with counter questions, doubts and arguments and also claim to be learned scholars. They after having understood all the glories accept the supremacy of dham. It is very difficult to understand this concept.

Continued